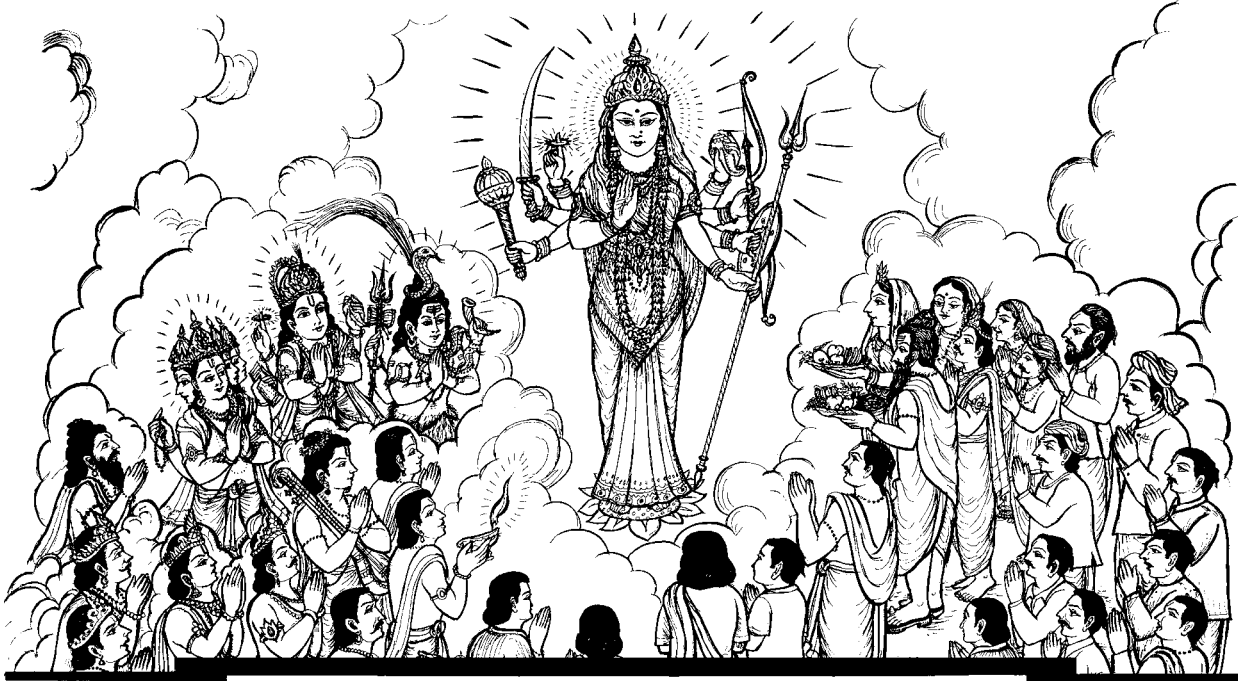


ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कामदायिका

नमो देव्यै जगद्धात्र्यै शिवायै सततं नमः । दुर्गायै भगवत्यै ते कामदायै नमो नमः ॥
नमः शिवायै शान्त्यै ते विद्यायै मोक्षदे नमः । विश्वव्याप्त्यै जगन्मातर्जगद्धात्र्यै नमः शिवे ॥

वर्ष
८३

गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०६६, श्रीकृष्ण-सं० ५२३५, मई २००९ ई०

संख्या
५

पूर्व संख्या ९९०

कृष्णाप्रिया श्रीयमुनाजीका ध्यान

श्यामामम्भोजनेत्रां सघनघनरुचिं रत्नमञ्जीरकूजत्
काञ्चीकेयूरयुक्तां कनकमणिमये बिभ्रतीं कुण्डले द्वे ।
भ्राजच्छीनीलवस्त्रां स्फुरदमलचलद्धारभारां मनोज्ञां
ध्याये मार्तण्डपुत्रीं तनुकिरणचयोद्दीप्तदीपाभिरामाम् ॥

जो श्यामा (श्यामवर्णा एवं षोडश वर्षकी अवस्थावाली) हैं, जिनके नेत्र प्रफुल्ल कमल-दलकी शोभाको छीने लेते हैं, घनीभूत मेघके समान जिनकी नील कान्ति है, जो रत्नोंद्वारा निर्मित बजते हुए नूपुर और झनकारती हुई करधनी एवं केयूर आदि आभूषणोंसे युक्त हैं तथा कानोंमें सुवर्ण एवं मणिनिर्मित दो कुण्डल धारण करती हैं, दीप्तिमती नीली साड़ीपर चमकते हुए गजमौक्तिकके चंचल हारका भार वहन करनेसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं, शरीरसे छिटकती हुई किरणोंकी राशिसे उद्दीप्त होनेके कारण जिनकी प्रज्वलित दीपमालाके समान शोभा हो रही है, उन सूर्यनन्दिनी यमुनाजीका मैं ध्यान करता हूँ। (गर्गसंहिता)

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण २, २५, ०००)

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०६६, श्रीकृष्ण-सं० ५२३५, मई २००९ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- कृष्णप्रिया श्रीयमुनाजीका ध्यान	६४९	१५- सुख-सन्तोषका जीवन कैसे जीयें (डॉ० श्रीकपिलदेवसिंहजी, पी-एच०डी०)	६६८
२- कल्याण (शिव)	६५१	१६- प्रसन्नता—एक जीवन-दर्शन (डॉ० श्रीविद्याभास्करजी वाजपेयी)	६७१
३- सर्वोपयोगी प्रश्न (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६५२	१७- 'मूढ मन तजत न विषय-विकार' [कविता] (पं० श्रीदेवकृष्णजी पाण्डेय)	६७४
४- 'मोर भयो मन मोर' [कविता] (आचार्य श्रीभानुदत्तजी त्रिपाठी 'मधुरेश')	६५४	१८- क्षीरसागर (सुश्री आशा सक्सेना)	६७५
५- अपने इष्टदेवका निर्णय (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	६५५	१९- गाय शत-प्रतिशत बच सकती है (श्रीमुलखराजजी विरमानी)	६७६
६- निर्गुण निराकार ब्रह्मत्व और उसकी प्राप्तिका साधन (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	६५६	२०- रोगमें भी भगवत्कृपाका अनुभव करें (श्रीघनश्यामदासजी मोदानी, बी०ए०, एल-एल० बी०) ...	६७८
७- जीवनका मोल [कविता] (स्व० श्रीसज्जनजी कविरत्न) [प्रेषक—डॉ० श्रीसत्येन्द्रजी पारीक]	६५८	२१- राम ते अधिक राम कर दासा (श्री एन०एल० बंसलजी) ...	६८१
८- नाम-साधना (समर्थ सद्गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर) [संग्राहक—श्री गो०सी० गोखले]	६५९	२२- कवि एवं भक्तशिरोमणि श्रीधन्नाजट्टजी (श्रीबलविन्द्रजी 'बालम')	६८२
९- साधकोंके प्रति—		२३- परोपकार (श्रीरामेश्वरजी टांटिया) [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]	६८३
(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	६६१	२४- ब्रजांगनाओंका नयनभाव (श्रीब्रजोरसिंहजी, एम०ए०) ...	६८४
१०- सन्त-उद्बोधन (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	६६२	२५- साधनोपयोगी पत्र	६८७
११- विचारणीय बातें (आचार्य पं० श्रीजालेश्वरजी महाराज)	६६२	२६- व्रतोत्सव-पर्व [श्रावणमासके व्रत-पर्व]	६९०
१२- 'बटोही धीरे-धीरे चल' (श्रीअर्जुनलालजी बंसल)	६६३	२७- कृपानुभूति	६९१
१३- राजभवनके यतिराज (आचार्य श्रीसोहनलालजी रामरंग) ...	६६५	२८- पढ़ो, समझो और करो	६९३
१४- देह रहते हुए विदेही क्यों? [प्रेरक-प्रसंग] (श्रीशरद् चन्द्रजी पेंढारकर, एम०ए०)	६६७	२९- मनन करने योग्य [प्रेषक—श्रीलखीरामजी अग्रवाल]	६९६

चित्र-सूची

१- शक्तिसहित श्रीमहागणपति	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- कृष्णप्रिया श्रीयमुनाजीका ध्यान	(")	मुख-पृष्ठ
३- वनगमनसे पूर्व लक्ष्मणको उपदेश देते हुए श्रीराम	(इकरंगा)	६७०
४- धन्नाजट्टजी	(")	६८२



वार्षिक शुल्क
अजिल्द १५० रु०
सजिल्द १७० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US\$25 (Rs.1250) (Sea Mail)
US\$40 (Rs.2000) (Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

पञ्चवर्षीय शुल्क
भारतमें
अजिल्द ७५० रु०
सजिल्द ८५० रु०

विदेशके लिये पंचवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते ।

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org e-mail : Kalyan@gitapress.org © (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें ।

कल्याण

याद रखो—चित्तकी धाराका प्रवाह एक भगवान्की ओर ही रहे, इस बातके लिये सदा यत्नशील बने रहो, जगत्की ओर कहीं मुड़े तो वह भी भगवान्की ओर जानेके सीधे रास्तेकी खोजमें ही। कहीं जरा-सी भी गड़बड़ी दीखे तो तुरंत प्रवाहको उस ओरसे वापस मोड़ लो। धन, जन, परिवार, शरीर, यश, सम्मान—कुछ भी तुम्हारे साथ नहीं जायँगे, परलोकमें ये तुम्हारे काम नहीं आयेंगे, तुम्हें विपत्तिसे नहीं बचायेंगे। अतएव इनके लिये जीवन मत गँवाओ। यदि भाग्यवश ये मिल गये तो सावधान रहो, कहीं तुमपर इनका नशा न चढ़ जाय—तुम कहीं भगवान्के मार्गसे हट न जाओ; इनसे चिपटो मत, मनको सदा इनसे अलग रखनेकी चेष्टा करो और हो सके तो इनका भी भगवत्प्राप्तिमें ही उपयोग करो।

पता नहीं शरीरका अन्त कब हो जाय, अतएव सदा तैयार रहो। जिसके आचरण शुद्ध हैं, जिसमें सद्गुणोंका विकास है, जिसका मन घरमें; परिवारमें; भोगोंमें नहीं अटकता, जो मनसे भगवान्को नहीं भूलता और जो शरीरसे अपनेको सदा अलग, चेतन, नित्य और अविनाशी समझता है, बस वही तैयार है। उसे मृत्युके समय रोना नहीं पड़ता।

याद रखो—जबतक शरीर स्वस्थ है, भोग भोगनेकी शक्ति है, भोगोंमें मन लगा है, मृत्यु सामने दिखायी नहीं देती, तबतक अवश्य ही बहुतोंको लिखी बातें अनावश्यक और कड़वी लग सकती हैं; परंतु एक दिन सभीको इन बातोंपर विचार करना पड़ता है और उस समय पहलेकी भूलका पछतावा बहुत ही भयानक होता है। पहलेसे ही विचार करके चेत जाओ तो अच्छी बात है।

धन, यौवन, रूप, पद, सम्मान, शक्ति, विद्या, वाग्मिता—सब-के-सब मौतका विकराल मुँह देखते ही विध्वस्त हो जायँगे। इनसे कुछ भी नहीं होगा। अतएव इनकी प्राप्तिको जीवनका उद्देश्य मत बनाओ और

प्राप्त होनेपर तनिक भी अभिमान मत करो। यह चार दिनोंकी चाँदनी जरूर ही नष्ट हो जायगी।

शास्त्र, संत, महात्मा और भक्तोंकी वाणीका अनुशीलन और अनुसरणकर भगवान्पर विश्वास करो; भगवान्के महत्त्वको समझो और भगवान्के प्रेमको पानेके लिये भगवान्की शरण हो जाओ।

याद रखो—काम, क्रोध, लोभ, द्वेष, हिंसा, मत्सर, अभिमान, ममत्व आदि दोष बड़े ही प्रबल हैं। इन सबको समूल नाश करनेका प्रयत्न करो। सत्संग या साधनाके प्रभावसे कभी-कभी मनुष्यको अपनेमें इन दोषोंका अभाव-सा दीखता है और वह अपनेको पूर्ण मान लेता है; परंतु इनका सर्वथा नष्ट हो जाना कठिन है। दोष दब जाते हैं; परंतु संस्काररूपसे मनमें छिपे रहते हैं, जो अनुकूल परिस्थिति और उत्तेजक कारण उपस्थित होनेपर जाग उठते हैं। यही कारण है कि सर्वथा निर्दोष समझे जानेवाले पुरुषमें भी कभी-कभी इन दोषोंका प्रभाव देखा जाता है।

अतएव अभिमानसे अपनेको बचाते हुए बड़ी ही सावधानीसे भगवान्के बलका आश्रय लेकर इन दोषोंको समूल नष्ट करनेकी चेष्टा करो। काम, क्रोधादिकी जागर्तिका सबल कारण उपस्थित होनेपर भी जब इनकी जागर्ति न हो, तब समझना चाहिये कि इनका नाश हो रहा है। ये संस्काररूपसे भी न रह जायँ, इसके लिये बार-बार आत्मपरीक्षा करके देखना चाहिये।

याद रखो—अपने द्वारा कोई अच्छा काम बन जाय तो उसके लिये भूलकर भी अभिमान मत करो। सफलताके लिये भगवान्के कृतज्ञ होओ और उन्हींकी शक्तिको सफलतामें कारण समझो। सफलताका अभिमान बहुत बाधक है। अभिमान उत्पन्न होते ही सफलता दूर भागने लगती है और कहीं किसी कारणवश ऐसा होनेमें देर होती है तो उसका परिणाम अभिमानकी अत्यन्त वृद्धि हो जानेके कारण और भी भयानक होता है। 'शिव'

सर्वोपयोगी प्रश्न

(ब्रह्मालीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

एक सज्जनने कुछ उपयोगी प्रश्न किये हैं, यहाँ वे उत्तरसहित प्रकाशित किये जाते हैं—

(१) प्रश्न—सच्चा वैराग्य किस प्रकार हो?

उत्तर—संसारके सम्पूर्ण पदार्थ क्षणभंगुर और नाशवान् होनेके कारण दुःखप्रद और अनित्य हैं, इस रहस्यको सच्चे वैराग्यवान् पुरुषोंके संगसे समझनेपर सच्चा वैराग्य हो सकता है।

(२) प्रश्न—ईश्वर-प्राप्ति पुरुषार्थ और भगवत्कृपाद्वारा होती है, वह पुरुषार्थ किस प्रकार किया जाय और भगवत्कृपा किस तरह समझी जाय?

उत्तर—सर्वव्यापी विज्ञानानन्दधन भगवान्की सब प्रकारसे शरण होना ही असली पुरुषार्थ है। अतएव भगवान्की शरण होनेके लिये वैराग्ययुक्त चित्तसे तत्पर होना चाहिये। भगवान्के नामका जप, उनके स्वरूपका ध्यान, उनकी आज्ञाका पालन और सुख-दुःखोंकी प्राप्तिके साधनोंमें एवं सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें उन परमात्माकी कृपाका पद-पदपर अनुभव करनेका नाम शरण है और उनकी शरण होनेसे ही उनकी कृपाका रहस्य समझमें आ सकता है।

(३) प्रश्न—ईश्वरके दर्शन और प्राप्तिका सहज उपाय क्या है?

उत्तर—अनन्य-भक्ति ही सहज उपाय है। भगवान्ने कहा है—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवविधोऽर्जुन।

ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥

(गीता ११।५४)

‘हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन! अनन्य-भक्तिके द्वारा तो मैं इस प्रकार प्रत्यक्ष देखा जा सकता हूँ, तत्त्वसे जाना जा सकता हूँ तथा एकीभावसे प्राप्त भी किया जा सकता हूँ।’

अनन्य-भक्तिका स्वरूप यह है—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(गीता ११।५५)

‘हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे लिये ही कर्म करता

है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिसे रहित है और सम्पूर्ण प्राणियोंमें वैरभावसे रहित है, वह (अनन्य भक्तिवाला पुरुष) मुझको (ही) प्राप्त होता है।’

सर्वव्यापी विज्ञानानन्दधन परमात्माके स्वरूपकी प्राप्ति तो ज्ञानयोगद्वारा भी हो सकती है। परंतु सगुण रूपके साक्षात् दर्शन केवल ईश्वरकी अनन्य-भक्तिसे ही होते हैं। अनन्य-भक्ति और अनन्य-शरण वस्तुतः एक ही है। परंतु व्याख्या करते समय शरणकी व्याख्यामें अनन्य-भक्तिका और अनन्य-भक्तिकी व्याख्यामें अनन्य-शरणका वर्णन हुआ करता है। जैसे उपर्युक्त श्लोकके ‘मत्परमः’ शब्दसे भगवत्-शरणका कथन किया गया है, वैसे ही गीता अध्याय ९ के ३४वें श्लोकमें शरणके अन्तर्गत अनन्य-भक्तिका कथन आया है। गीता अध्याय ९ के ३२वें श्लोकमें भगवान्ने अर्जुनसे कहा— स्त्री, वैश्य, शूद्र और पापयोनिवाले (अन्त्यज) भी मेरी शरण होकर परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

इस उपदेशके बाद आगे चलकर भगवान्ने ३४वें श्लोकमें शरणका स्वरूप इस प्रकार बतलाया—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्परायणः॥

‘मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त हो, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझे प्रणाम कर। इस प्रकार मेरे शरण हुआ (तू) आत्माको मुझमें एकीभाव करके मुझको ही प्राप्त होगा।’

यों तो इस सारे ही श्लोकमें ‘शरण’ के नामसे अनन्य-भक्तिका ही वर्णन है, परंतु ‘मद्भक्तो भव’ शब्दसे स्पष्टरूपमें भक्तिका कथन है।

(४) प्रश्न—मनुष्य ईश्वरकी जरूरत क्यों नहीं समझता और उस जरूरतके समझनेका उपाय क्या है?

उत्तर—ईश्वरके स्वरूप, रहस्य, स्वभाव, गुण, प्रभाव और तत्त्वको न जाननेके कारण ही ईश्वरकी जरूरत मनुष्यकी समझमें नहीं आती। इस अज्ञानके नाश होते ही जरूरत



समझमें आ जाती है। ईश्वरके उपर्युक्त स्वरूपादिको यथार्थतः जाननेवाले पुरुषोंके संगसे ही इस अज्ञानका नाश हो सकता है।

(५) प्रश्न—

उमा राम सुभाउ जेहि जाना।

ताहि भजनु तजि भाव न आना॥

भगवान्का ऐसा कौन-सा स्वभाव है, जिसके जान लेनेपर भजन किये बिना न रहा जाय?

उत्तर—भगवान् पुरुषोत्तम बिना ही कारण सबपर दया और प्रेम करनेवाले परम सुहृद् हैं, शरणागतवत्सल हैं एवं दीनबन्धु हैं इत्यादि अनेक गुणोंसे युक्त उनके स्वभावको तत्त्वसे जान लेनेपर मनुष्य उनका भजन किये बिना नहीं रह सकता।

श्रीभगवान् स्वयं कहते हैं—

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।

स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५।१९)

‘हे भारत! इस प्रकार तत्त्वसे जो ज्ञानी पुरुष मुझको पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।’

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५।२९)

‘हे अर्जुन! मेरा भक्त मुझको यज्ञ और तपोंका भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित प्रेमी तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है।’

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(गीता ४।११)

‘हे अर्जुन! जो मुझको जैसे भजते हैं, मैं भी उनको वैसे ही भजता हूँ। इस रहस्यको जानकर ही बुद्धिमान् मनुष्यगण सब प्रकारसे मेरे मार्गके अनुसार बर्तते हैं।’

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा० रा० ६।१८।३३)

‘मेरा यह व्रत है कि जो एक बार भी मेरी शरण आकर ‘मैं तुम्हारा हूँ’ ऐसा कहकर मुझसे अभय चाहता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ।’

(६) प्रश्न—हम बड़ी-बड़ी बातें करना ही जानते हैं, साधन नहीं करते, ऐसा क्यों होता है?

उत्तर—बुरी आदतके कारण ऐसा होता है। सत्पुरुषोंके और उत्तम साधकोंके संगसे एवं शास्त्रके विचारसे यह आदत नष्ट हो सकती है।

(७) प्रश्न—सच्चे महात्माओंके प्रति भी कभी-कभी अविश्वास होनेमें क्या कारण है?

उत्तर—नास्तिक पुरुषोंका संग और पूर्वकृत पापोंके संस्कारोंका उदय; इन दो कारणोंसे सच्चे महात्माओंके प्रति भी कभी-कभी अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। अतएव विचारके द्वारा नास्तिक पुरुषोंके संगका त्याग और कुसंस्कारोंका परिहार करना चाहिये। कुसंस्कारोंके नाशके लिये ईश्वरसे प्रार्थना भी करनी चाहिये।

(८) प्रश्न—यदि हम पुरुषार्थ नहीं करें, केवल भगवत्कृपा समझते रहें तो क्या उद्धार नहीं हो सकता?

उत्तर—भगवत्कृपाके समझनेका यह दुष्परिणाम नहीं हो सकता कि जिसमें समझनेवाला भगवत्कृपाके अनुकूल पुरुषार्थसे रहित हो जाय; क्योंकि भगवान्की शरण होना ही असली पुरुषार्थ है और शरण होनेसे ही मनुष्य भगवान्की कृपाके रहस्यको समझ सकता है। फिर उस कृपाके रहस्यको समझनेवाला पुरुष पुरुषार्थहीन कैसे हो सकता है?

(९) प्रश्न—भगवान् हर जगह मौजूद हैं, हमारी प्रार्थना दयार्द्र हृदयसे सुनते हैं और व्याकुल होनेपर प्रकट होकर दर्शन भी दे सकते हैं, ऐसा दृढ़ विश्वास कैसे हो?

उत्तर—भगवान्के गुण, प्रेम, प्रभाव, रहस्य, लीला और तत्त्वके अमृतमय वचन उनके तत्त्वको जाननेवाले भक्तोंद्वारा पुनः-पुनः श्रवण करके मनन करनेसे एवं उनके बतलाये हुए मार्गके अनुसार चलनेसे दृढ़ विश्वास हो सकता है।

(१०) प्रश्न—कोई अपनेको नीचा समझता है तो वह नीचा हो जाता है, किंतु गोसाईं तुलसीदासजी तो अपनेको दीन समझकर ही परमपदको पा गये। यह कैसे हुआ?

अपने इष्टदेवका निर्णय

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

कोई जिज्ञासु ऐसा प्रश्न कर सकता है कि भगवान् शिव, विष्णु, राम, कृष्ण आदि देवताओंमेंसे किसकी उपासना करनी चाहिये? कोई किसीको तो कोई किसीको बड़ा बतलाता है। ऐसी स्थितिमें बुद्धि व्याकुल हो जाती है। इसका उत्तर यही हो सकता है कि भगवान्के विचित्र प्रपंचमें विचित्र स्वभावके जीवोंका निवास है, इसलिये श्रीभगवान् भिन्न स्वभाववाले जीवोंकी विभिन्न रुचियोंका अनुसरण करके विभिन्न रूपमें प्रकट होते हैं। किसीका चित्त भगवान्के किसी स्वरूपमें खिंचता है, किसीका किसीमें। वेदपुराणादि शास्त्रोंमें सर्वोत्कृष्टरूपसे प्रतिपादित सभी रूप भगवान्के ही हैं। अतः जिस रूपमें प्रीति हो, उसी रूपकी उपासना करनी चाहिये। अनभिज्ञ लोग एक रूपकी निन्दा और दूसरे रूपकी प्रशंसा करते हैं, अभिज्ञ तो सभी रूपमें अपने प्रभुको ही देखकर सन्तुष्ट होते हैं। जैसे कोई व्यक्ति अनेक विधाओंमें निपुण होनेके कारण अपने अनेक वेष और नामोंसे अनेक कार्य करता हो, भिन्न-भिन्न कार्यार्थी पृथक् वेष और नामवाले रूपके अनुरागी हैं और उसे ही सर्वोत्कृष्ट समझने लगें। दूसरे लोग दूसरे वेष और नामवाले रूपके अनुरागी हों। उनमें कुछ लोग किसी रूपके प्रशंसक हों और कुछ किसीके निन्दक हों, इसलिये परस्पर युद्ध होने लगे तो वहाँ जो लोग वस्तु-स्थितिको जाननेवाले होंगे, वे तो दोनों ही विवादी दलोंकी मूर्खतापर परिहास करेंगे; क्योंकि वे दोनों ही वेषोंमें एक ही तत्त्वको देखते हैं।

‘योगवासिष्ठ’ के विपश्चिदाख्यानमें मृगरूपसे समागत विपश्चित्को देखकर श्रीवसिष्ठजीने यही विचार किया था कि जिस व्यक्तिका जो स्वरूप कभी भी उपास्य हो, उसका कल्याण उसके ही द्वारा सुगम होता है। यह समझकर करोड़ों जन्मके पहले अग्निकी उपासना करनेवाले मृगरूप विपश्चित्के सामने अपने योगबलसे उन्होंने अग्निका प्राकट्य किया। अग्निका दर्शन होते ही वह मृग ऐसी स्नेहभरी दृष्टिसे अग्निको देखने लगा, जैसे अग्निके साथ उसका कोई बहुत पुराना सम्बन्ध हो। अनन्तर वसिष्ठजीकी कृपासे उसका कल्याण हुआ। अस्तु, प्रकृतमें कहना यही है कि स्वप्नदर्शन तथा माहात्म्यश्रवण आदिसे चित्तका आकर्षण देखकर अपने इष्टदेवका निर्णय करना चाहिये। यह स्पष्ट है कि अनेक जन्मके साधनोंसे प्राणीकी उपासनामें उन्नति होती है। जन्म-जन्ममें मार्ग-परिवर्तन करनेसे यथेष्ट लाभ सम्भव नहीं है। अतः पूर्वकी उपासनाके संस्कारका ज्ञान करके उसी उपासनामें प्रवृत्त होना चाहिये। पितृ-पितामह-परम्पराकी उपासनाओंके अनुसार ही प्राणीको उपासना करनी चाहिये।

वर्तमान जन्मकी सत्प्रवृत्ति और दुष्प्रवृत्तिमें पिछले जन्मोंके संस्कार भी अपेक्षित होते हैं। यदि किसीको दुर्दैववश किसी ऐसे देश-कालमें, ऐसे माता-पिता, गुरुजनों तथा ग्रन्थोंका संसर्ग हुआ कि जिनसे दुराचार-दुर्विचारको ही उत्तेजना मिली, तो उस व्यक्तिके लिये दुःसंग और असद् विचारवाले शास्त्रोंको छोड़कर सत्पुरुषसंग, सच्छास्त्रका अभ्यास एवं तदनुसार सदाचार-सद्विचारके सम्पादनमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। जिसे पूर्व संस्कारके अनुसार शुद्ध विचारवाले देशकाल तथा माता-पिता, गुरुजनोंका संयोग प्राप्त हुआ और सच्छास्त्र ही अध्ययन करनेको मिले, उसके लिये सदाचार-सद्विचारकी वृद्धिमें बड़ी सहायता मिलती है। इसलिये प्रायः सन्मार्गस्थ सदाचारीको उसकी भावना और उपासनाके अनुसार ही समीचीन देशकाल और माता-पिता तथा शास्त्रोंका संसर्ग मिलता है। इसी बातकी इंगना श्रीभगवान्ने ‘शुचीनां श्रीमतां गेहे’, ‘अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्’ ‘पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्यियते ह्यवशोऽपि सः’ इत्यादि वचनोंसे की है। इसलिये यह बहुत सम्भव है कि हमारी उपासनाके अनुकूल ही कुलमें हमारा जन्म हुआ हो। अतः हमें माता-पिता, गुरुजनोंके अनुसार ही उपासना करनी चाहिये।

यों भी इस बातके समझनेमें सुगमता होगी कि जैसे कोई पुरुष किसी अपरिचित मार्गसे किसी अभीष्ट देशमें जा रहा हो, प्रश्न करनेपर सभी अपने मार्गको ही निर्विघ्न बतलाते हों, साथ ही दूसरे मार्गोंको नाना प्रकारके सिंह-व्याघ्र-सर्प-वृश्चिक-कण्टकाकीर्ण गर्तोंसे उपद्रुत बतलाते हों, ऐसी स्थितिमें यदि जाना आवश्यक ही हो, तो वह प्राणी किस मार्गका अवलम्बन करेगा? समझदार तो यही कहेंगे कि उन मार्गानुगामियोंमेंसे अधिक विश्वास उन्हींपर किया जा सकता है, जो अपने राष्ट्र, प्रान्त तथा ग्रामके हों या अपने कुटुम्बियोंमेंसे हों। यह बात दूसरी है कि जब बहुत विशिष्ट अनुभवोंसे उस मार्गके दूषित तथा मार्गान्तरके निर्विघ्न होनेकी बात निश्चित हो गयी हो, तब किसी दूसरे मार्गका अवलम्बन किया जाय।

इसलिये भी अपनी पितृ-पितामह-परम्परामें जो उपासना और आचार तथा शास्त्र मान्य हों, वही उचित है। वेदने भी ‘किंस्वित् पुत्रेभ्यः पितरावुपावतुः’ इस वाक्यसे परम्परागत आचारका समर्थन किया है। श्रीनीलकण्ठजीने इसका यही अभिप्राय बतलाया है कि पुत्रके हितके लिये माता, पिता या पितामहप्रभृतिने जिस व्रतका पालन या जिस देवताकी उपासना की हो, उस पुत्रको उसी व्रत या देवताका अवलम्बन करना चाहिये।

निर्गुण निराकार ब्रह्मत्व और उसकी प्राप्तिका साधन

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[गतांक पृ०सं० ६१० से आगे]

भगवान्की लीला ब्रह्मलीला भी है। भगवान्की आकृति भी लीला है। इन भगवान्की लीला रामलीला भी है। भगवान्की लीला शिवलीला भी है, देवीलीला भी है। जितनी लीलाएँ हैं वे सभी एक भगवान्की लीला हैं, वे भगवान् निर्गुण और सगुण दोनों कैसे? इसका एक दूसरा तत्त्व है। यह बात पद्मपुराणमें आयी है। पद्मपुराणमें भगवान् शंकरने स्तुतिमें कहा कि लोग तो आपको निर्गुण कहते हैं और निराकार कहते हैं, परंतु आप तो सगुण और साकार रूपमें हमारे सामने हैं। और, आप कहते हैं कि हम वही हैं। इसमें क्या रहस्य है? यह सीधा संवाद है, कोई स्थानान्तरण नहीं है। उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णने कहा—‘शिवजी! इसे चाहे जो समझें। यह जो त्रिगुणके गुण हैं—सत्, रज और तम, इन गुणोंवाले जो गुण हैं, वे सारे गुण जगत्में हैं। इन गुणोंसे जो सगुण है, वह दूसरा है। ये गुण मुझमें नहीं हैं। मेरा जो भगवत्स्वरूपभूत गुण है, वह मुझमें हमेशा है।’ अगर ऐसा न हो तो भगवत्ता नहीं।

कोई भी क्या इस बातको कह सकता है कि ब्रह्म भी है और सच्चिदानन्दरूप भी है। निर्गुणवादी भी कोई यह कह दे कि हमारा ब्रह्म शून्य है तो बौद्धोंका शून्य होगा, शांकर वेदान्तका नहीं है। वह तो सत्तामय है, चिन्मय है, आनन्दमय है। सत्ता, चिन्मयता और आनन्दमयता—ये तीनों ब्रह्मके स्वरूप हैं। उस स्वरूपसे अधिक स्वरूपभूतगुणका क्या अर्थ है? स्वरूपभूतगुण गुण नहीं है। बृहदारण्यकोपनिषद्में ब्रह्मके आठ लक्षण बताये गये हैं। वे आठ गुण जिसमें हैं वह ब्रह्म है। यद्यपि ब्रह्मके जो गुण हैं, वे ब्रह्मकी सत्तासे भिन्न नहीं हैं। इसी प्रकार श्रीकृष्णके जो गुण हैं, वे श्रीकृष्णसे भिन्न नहीं हैं। इसी प्रकार श्रीकृष्णका जो स्वरूप है—नीलविग्रह-आकार—यह आकार पांचभौतिक नहीं है। यह हानोपादानरहित—बनने-बिगड़नेवाला नहीं है। इसीलिये गीता (४।६)-में कहा है—

‘अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।’

यहाँ ‘सन्’ शब्द आया है। अज रहते हुए जन्म लेते हैं। अविनाशी रहते हुए अन्तर्धान होते हैं। सारे जीवोंके महान् ईश्वर रहते हुए भी नन्दबाबाके बालक बनकर उनके शासनमें

रहते हैं। यह क्या चीज है? क्या वे बदल गये? क्या उनमें अज्ञान आ गया? नहीं। यह उनका स्वरूपभूतगुण है। प्राकृतिक गुण उनमें नहीं है, इसलिये वे निर्गुण हैं। प्रकृति—माँके पेटमें बना मेरा आकार नहीं है, इसलिये मैं निराकार हूँ—

‘स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।’

(श्रीमद्भा० १०।१४।२)

श्रीमद्भागवतमें ब्रह्माजीने स्तुति करते हुए कहा कि प्रभो! आपका जो यह शरीर है, यह स्वेच्छामय है, पांचभौतिक नहीं है।

चिदानन्दमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥

(रा०च०मा० २।१२७।५)

महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—हे रामचन्द्र! आपका जो यह शरीर है यह चिदानन्दमय है। यह विगतविकार है—इसमें कभी विकार पैदा ही नहीं होता। निर्विकार है—आपके जो गुण हैं, वे प्राकृतिक गुण नहीं हैं। इसलिये भगवान् सगुण होते हुए भी स्व-गुणयुक्त हैं। उनके गुण उनके स्वरूपसे अभिन्न हैं। उनके हस्त, पाद, करादि समस्त अंग चिन्मय हैं। वे कानसे चल सकते हैं और वे पैरसे देख सकते हैं। उनके जितने भी अंग-अवयव हैं वे सब-के-सब चिन्मय हैं, सन्मय हैं, नित्य हैं और आनन्दमय हैं। यह शास्त्रमें आया है कि सभी आनन्दमय हैं। उनका पैर भी आनन्दमय, उनका श्रीमुख भी आनन्दमय और उनकी वाणी भी आनन्दमय है और उन आनन्दमयकी जो आत्मा है उसका नाम ‘राधा’ है।

हमारे ब्रह्म जो हैं जिनकी बात ऊपर वर्णित है, वे ब्रह्म हमारे श्रीकृष्णकी लीला हैं। ब्रह्म वही हैं। इस ब्रह्मके अलावा दूसरा कोई बता नहीं सकता। अजातवादी भी नहीं बता सकेगा। वह कहेगा कि यह नित्य सत्य वस्तु है, और कोई वस्तु पैदा नहीं हुई है। हम भी यही कहते हैं कि और कोई वस्तु पैदा हुई नहीं। जो अजातवाद है, वह यही है कि कोई पैदा नहीं हुआ। पैदा कहाँ हुआ? यह तो लीला है। लीलामयकी लीला है। ब्रह्मसूत्रका सूत्र है—

‘लोकवन्तु लीलाकैवल्यम् ॥’

(वेदान्तदर्शन २।१।३३)

सभी मत ठीक हैं, खण्डन किसीका नहीं। सब अपनी आँखसे भगवान्को देखते हैं और भगवान् सबकी आँखोंमें आनेवाले तत्त्व हैं। जिसकी जैसी आँख, वैसा उसके लिये भगवान्का रूप। इसमें किसी खण्डन-मण्डनकी आवश्यकता नहीं। हम तो अजातवादको भी ठीक मानते हैं, ब्रह्मवादको भी और ‘अहं ब्रह्मास्मि’ को भी ठीक मानते हैं।

यह हमारे श्रीकृष्णकी सारी-की-सारी लीला है। श्रीकृष्ण जो हैं वे सगुण होते हुए भी निर्गुण हैं और निर्गुण होते हुए भी सगुण हैं। सच्चिदानन्दमय होते हुए भी सब कुछ हैं। इनके साथ सम्बन्ध जोड़नेसे क्या होगा? यह एक विशेषताकी बात है कि इससे इनकी लीलाओंका सारा ज्ञान इनकी कृपासे हो जायगा। इनकी कृपासे, भगवदनुग्रहसे जितना सहज ब्रह्मज्ञान होता है, उतना साधनसे नहीं होता। यह सच्ची बात है। इसमें दो चीजोंको प्रधान माना है— भगवत्कृपा और गुरुकृपा। एक मनीषीने अपने विचार-सागरमें भगवान्को प्रणाम नहीं किया। उन्होंने कहा—

‘मैं हूँ मेरी आत्मा काको करूँ प्रणाम’

प्रारम्भमें ही यह प्रणामका खण्डन है। वे भी जब गुरुतत्त्वपर कहते हैं तो कहते हैं कि गुरुके द्वारा सारा ज्ञान होता है। जैसे हम किसी प्रतिमामें भगवान्की कल्पना करते हैं, उसी प्रकार वहाँ गुरुमें भगवान्की कल्पना है। बिना इसके कार्य होता नहीं है।

यह सत्य बात है और सबके लिये है कि भगवत्कृपा और गुरुकृपासे जितना अधिक शीघ्र मनुष्य साधनमें सफल होता है, उतना शीघ्र केवल अपनी साधनाके बलपर नहीं होता है। इसमें दो चीजें होती हैं—साधना अभिमान पैदा करती है और साधनामें व्यक्ति अपने बलपर विघ्नोंको हटानेमें असमर्थ होता है। निजकी साधनामें वह कर्मचारी होता है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि साधन करनेवाला पार नहीं होगा। अगर वह मजबूत है तो पार जायेगा। लेकिन गुरुकृपा और भगवत्कृपा—ये दो चीज होनेपर दो बात बनती है। एक, जहाँ-जहाँपर उसका पैर फिसलता है, जहाँ-जहाँपर रास्ता चूकता है, जहाँ-जहाँपर आँख चौंधियाती है; वहाँ-वहाँपर गुरु

हाथ पकड़ लेते हैं, भगवान् हाथ पकड़ लेते हैं। वे कहते हैं— खबरदार! रुक जा। आगे फिसलाहट है। हम देखते हैं, तुम नहीं देख पाओगे। तब रास्ता निर्विघ्न कटता है। दूसरी बात यह कि यदि कोई हाथ पकड़नेवाला नहीं है तो विघ्नोंको टालेगा कैसे? पैर फिसला नहीं कि गिरे और जहाँ गिरा वहाँ उठना बड़ा मुश्किल है। संसारमें गिरे हुए—पर लातें पड़ा करती हैं। यह संसारका स्वरूप है। सफलतामें सब भगवान्को मानते हैं और असफलतामें भगवान्पर लाँछन लगा देते हैं। संसारमें सफलता ही भगवान् हैं।

जब हिटलर विजय प्राप्त कर रहा था तब एक बंगाली साधुने कहा—हिटलर भगवान्का अवतार है। हिटलरने जो तय कर रखा है वही होगा, वही हो रहा है। और आज? अब कहीं कोई बुरी बातका प्रमाण देना होता है तो कहते हैं हिटलर बना है; हिटलरशाही चला रहा है। इसका कोई मतलब नहीं है। अगर साधनामें गिरे भी तो ईमानदारीसे गिरे। चल रहा था, फिसल गया। तब लोग धक्का मारेंगे और यदि पार उतर गया तो कहेंगे कि यह बड़ा पुरुषार्थी है। हम तो जानते ही थे कि यह पहुँचा हुआ है।

गुरु और भगवान्—ये क्या करते हैं कि रक्षा करते हैं, सम्हालते हैं, बल देते हैं, शक्ति देते हैं, साथ देते हैं, मार्ग दिखाते हैं और प्रकाश देते हैं। इसीलिये भगवत्कृपासे जो कार्य होगा, वह काम केवल वैराग्य और साधनासे नहीं होगा। वैराग्यमें जबतक राग न हो तबतक कार्य होता नहीं है। हाँ, वैराग्यमें भी राग होता है। फिर उस रागका भी त्याग होता है प्रेममें। यह बड़ी सुन्दर चीज है।

‘वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥’

(श्रीमद्भा० माहात्म्य ४।७९)

वैराग्यके रंगमें रँग जाओ। वैराग्यमें भी राग है, रस है। इसलिये कहा है—‘वैराग्यनिराभयम्’—वैराग्यमें जो अभयता है वह कहीं है नहीं। उसमें बड़ा सुन्दर निर्मल रस है। परंतु भगवान्के प्रेममें वैराग्यसे भी वैराग्य हो जाता है।

‘मुक्ति हूँ नौन सी खारी लागे’—भगवान्के रागमें मुक्ति भिखारी प्रतीत होती है। प्रेमीके सामने मुक्ति आदि नाचती हैं और कहती हैं कि मुझे ग्रहण कर लो। लेकिन प्रेमी कहता है—हमें आवश्यकता नहीं है।

मोक्ष दरवाजेपर आकर सोया करता है। तुलसीदासजी कहते हैं—

चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।

सो हों सुमिरत नाम-सुधारस पेखत परसि धरो ॥

(विनय-पत्रिका २२६)

इसका अर्थ यह है कि अनन्त योनियोंसे बड़े-बड़े साधनोंकी जूठी पत्तलें कुत्तेकी भाँति चाटा करता था, परंतु कहीं नहीं पेट भरा। वही मैं, भगवान्का स्मरण करनेपर क्या हो गया? सुधारस—मुक्तिरस—अमृततत्त्व मेरे सामने परोसा रखा है, परंतु मैं लेना नहीं चाहता। यह मुक्ति कहती है कि हमें स्वीकार कर लो, अमिय रस कहता है हमें पी जाओ, परंतु मैं कहता हूँ कि मुझे और रस नहीं चाहिये, मैं तो केवल राम-रस पीऊँगा।

‘दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥’

(श्रीमद्भा० ३।२९।१३)

भगवान् कहते हैं—मेरी सेवाको छोड़कर मेरे भक्त देनेपर भी मुक्तिको स्वीकार नहीं करते।

‘मुक्ति निरादर भगति लुभाने’—मुक्तिको त्यागकर प्रेम करना चाहते हैं। इसलिये प्रेममें वैराग्यका भी वैराग्य होता है।

‘व्रजरज उड़ि मस्तक चढ़ै, मुक्ति मुक्त है जाय’

बेचारी मुक्ति बन्धनमें रहती है। मुक्ति किसीकी हो गयी तो मुक्तिको मुक्त कौन करे? मुक्तिको मुक्त कर दिया—व्रजधूलिने। व्रजरजके उड़कर मस्तकपर आते ही बेचारी मुक्ति मुक्त हो जाती है, फिर मुक्तिका कोई बन्धन नहीं रहता। प्रेमीके सामने मुक्ति घूमा करती है, लेकिन वह भक्त कहता है कि तुम घूमो। अब हम तुमको नहीं बाँधेंगे। मुझसे मेरे श्यामसुन्दर बँध गये हैं। मुक्तिमें बन्धनको तोड़ना है और प्रेममें श्रीकृष्णको बन्धनमें बाँधना है—यह अन्तर है। [समाप्त]

जीवनका मोल

(स्व० श्रीसज्जनजी कविरल)

दिखा के मंगल-मंजुल-मूर्ति
छुपे हो कहाँ, कहो, किस ठोर?
निहारें टक-टक व्याकुल नयन
तड़पता दर्शन को मन-मोर ॥
छलकता जीवन का प्याला
टूटती है आशा की डोर।
गगन से हँसते हैं नक्षत्र
तुम्हारी लख निष्ठुरता घोर ॥
उठा है मानस में तूफान
मचा है चहुँ-दिश हाहाकार।
प्रलय के छाये घन घनघोर
निराशामय हे प्राणाधार ॥
सभी इच्छाएँ भस्मीभूत
हुई जाती हैं मेरी, श्याम!
धरुँ अब धीर कहो, कैसे?
नहीं मन-मानस में आराम ॥
भटकते फिरते बन-बन में
ढूँढ़ने निशि-दिन पागल प्राण।
हृदय में ध्यान, नयन में प्राण
लगा है जब से विरही-बाण ॥

निठुर! तुम कैसे निष्ठुर हो?
न लेते सुध, हो बैठे मौन।
लगन, चिन्तन में जिसकी हो,
कहो, ऐसा है ‘प्रेमी’ कौन? ॥
स्मरण है भूत-पूर्व की बात?
लता-कुंजों में जब चुपचाप।
चले आये चोरों की भाँति
सुनाने अपना प्रेम-प्रलाप ॥
मधुर वीणा की सुन झंकार
मेरा यह भोला-भाला मन।
किया था प्रथम मिलन ही में
समर्पित अपना जीवन-धन ॥
उसी दिन को क्या भूल गये?
हाथ में लेकर मेरा हाथ।
कहा था—‘प्राणवल्लभे प्राण!’
रहूँगा सदा तुम्हारे साथ ॥
भला, यह फिर कैसा प्रतिकार?
बता दो, मुख से कुछ तो बोल।
तड़पना रोना, बिलखना ही
यही है क्या जीवन का मोल? ॥

[प्रेषक—डॉ० श्रीसत्येन्द्रजी पारीक]

नाम-साधना

(समर्थ सद्गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर)

नामके प्रति प्रेम नामके सहवाससे ही निर्माण होगा

नामके प्रति प्रेमका निर्माण होनेके लिये अपनी प्रेममयी माताकी ओर निहारो। बच्चेको जरा-सा बुखार चढ़ते ही माताका कलेजा धक्-धक् होने लगता है। खाना अच्छा नहीं लगता, नींद नहीं आती, न जाने क्या-क्या होता है। मतलब कि वह पूरी तरहसे बेचैन हो जाती है। क्या नामस्मरणमें बाधा आनेपर हमारी ऐसी स्थिति होती है? इसका उत्तर स्वयं ही सोचो। नामस्मरण करना मेरा धर्म है, वह मेरा आद्य कर्तव्य है, उसके बिना जीना मृत्युके समान है, नामस्मरणमें ही मेरा अत्यधिक हित है, बल्कि नामस्मरणके लिये ही मेरा जन्म है, उसीमें मैं विलीन हो जाऊँगा, इतनी प्रबल भावनासे नामस्मरण करना जरूरी है। तब कोई कहे कि प्रेम-निर्माण नहीं हुआ तो बात मान भी सकते हैं, लेकिन ऐसी अवस्था निर्मित ही नहीं हो सकती, अतः प्रेम-निर्माण होकर रहेगा। नामस्मरणके प्रति प्रेम या रुचिका निर्माण नहीं होता—इसका मतलब ही है कि नामस्मरणमें हमारी निष्ठा कम है, श्रद्धा कम है। इन सब बातोंके लिये एक ही उपाय है—जैसा बनेगा वैसा ही नामस्मरण करनेका दृढ़ निश्चय करना। इसीके द्वारा हम एक-एक कदम प्रगत हो पायेंगे और अन्तमें ध्येयसिद्धि होगी। 'परिस्थिति अच्छी होगी, तब नामस्मरण करेंगे' यह कहनेवाला नामस्मरण कभी करेगा ही नहीं।

नाम भीतरसे मनमें या उच्चारण करके लिया जा सकता है। नामस्मरणमें रमनेसे अन्तःकरणकी शुद्धता होगी और अन्तःकरणकी शुद्धता होनेपर भगवान्के प्रति प्रेमका निर्माण होगा। केवल ढेर नामस्मरण करनेकी अपेक्षा विचार और विवेकपूर्वक नामस्मरणके कारण निर्माण होनेवाला प्रेम आवश्यक है। सत्यतः नामस्मरणमें ही उसका प्रेम निश्चित होता है। मट्टेमें मक्खन होता ही है, सिर्फ वह ऊपर दिखायी नहीं देता किंतु मट्टा मथनेपर जैसे मक्खन ऊपर आता है, वैसे भगवान्का नामस्मरण करनेपर उसके प्रति जो प्रेम है वह ऊपर आता है। मामूली शब्दोंसे भी हमारे मनमें विविध प्रकारके भाव निर्मित होते हैं, तो क्यों भला नामस्मरणके कारण भगवान्के प्रति प्रेम-भाव निर्मित नहीं होंगे? आज जितनी फुरसत तुम्हें मिलती है, उतना समय नामस्मरणमें व्यतीत करनेका प्रयास करो। बहुत दिनतक एक ही मकानमें

रहनेपर हमारे मनमें उस मकानके प्रति लगावका निर्माण होता है न? गृहस्थीका प्रेम हममें सहवासके कारण निर्माण हुआ है। उसी प्रकार नामस्मरणके अखण्ड सहवासके कारण उसका भी प्रेम अपने-आप निर्माण होगा। उठते-बैठते, चलते-बोलते हमें अनुसंधान यानी भगवान्से निरन्तर सम्बन्ध रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। किसी भी लम्बे अर्सेके बाद व्यसनकी आदत हो जाती है। फिर आदमी दिन-प्रतिदिन उसके अधीन हो जाता है। उदाहरणके लिये अफीमकी बात लीजिये। अफीमचीको दिन-प्रतिदिन अधिक अफीम लगती है। इसी प्रकार हमें भी भगवान्के नामस्मरणका व्यसन लगना चाहिये। कोई भी अच्छी बात सधनेके लिये कठिन तो होगी ही। किंतु अल्पश्रममें अधिक प्राप्ति करा देनेवाला नामस्मरणके अलावा दूसरा कोई साधन ही नहीं है। इसलिये भीतरसे मनमें निरन्तर नामस्मरण करना चाहिये।

नाम और विकल्प

हमलोग प्रायः ऐसी शिकायत करते हैं कि नामस्मरण प्रारम्भ करते ही अनेक विकल्प निर्माण होते हैं और नामस्मरणके प्रति हमारी निष्ठा कम होती है। क्या इसके लिये कोई उपाय है? लेकिन मनकी ऐसी अवस्था निर्मित होनेमें ही हमारे ध्यानमें एक बात नहीं आती कि मनकी यह अवस्था ही नामस्मरणका महत्त्व प्रस्थापित करती है। जब व्यक्ति नामस्मरण करना प्रारम्भ कर देता है तब विकल्प घबड़ाने लगते हैं, वे जानते हैं कि अब यह व्यक्ति नामस्मरण करने लगा है अब हमारी कोई खैर नहीं, इस डरसे वे चंचल होते हैं, इसलिये वे व्यक्तिको नामस्मरणसे परावृत्त करनेका प्रयत्न करते हैं, विकल्प बहुत सूक्ष्म होते हैं; इसलिये उनका उच्चाटन करनेका उपाय भी उनकी जड़ोंतक पहुँचनेवाला और सूक्ष्म होना चाहिये। भगवान्का नामस्मरण ही इसका उपाय है। कोई साँप बाँबीमें घुस गया हो तो उसे बाहर निकालनेके लिये ऐसा उपाय ढूँढ़ निकालना चाहिये, जो उसे वहाँ ठहरनेके लिये मुश्किल कर दे। बाहरसे शोर-गुल करनेसे कोई परिणाम नहीं निकलता। बाँबीमें धुआँ या गरम पानी छोड़नेपर वह बाहर आता है। ठीक इसी तरह नामस्मरण करनेपर यदि विकल्प निर्मित होते हैं तो मानना चाहिये कि नामस्मरणकी आँच विकल्पोंकी जड़ोंतक पहुँच गयी है। अतः नामस्मरण करनेपर विकल्प-निर्माण होने

साधकोंके प्रति—

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[गतांक पृ०-सं० ६१५ से आगे]

अपना आचरण, भाव ठीक रखो, लोग चाहे जो कहें। कपड़ा लोक-सुहावता (लोक-मर्यादाके अनुसार) पहनो और रोटी शरीर-सुहावती खाओ। अपने आचरण, भावकी तरफ देखकर सन्तोष करो, लोगोंकी तरफ मत देखो। अपना आचरण बेठीक हो तो सुधार कर लो। मेरे दादागुरु कहा करते थे कि स्त्रियोंको सब कपड़े नये नहीं पहनने चाहिये, एक-दो पुराने कपड़े भी रखने चाहिये।

अपने भजनमें लगे रहो। संसारमें क्या हो रहा है और क्या होगा—इसकी चिन्ता मत करो—‘**होइहि सोइ जो राम रचि राखा**’ (मानस, बाल० ५२।४)। भजनमें लग जाओ, निर्वाहकी चिन्ता मत करो। आज भजनमें लग जाओ और कल मृत्यु हो जाय तो आपका उम्रभर भजन हो गया।

पुरानी बात कही जाय तो समझे कि कुछ-न-कुछ घाटा पड़ गया है।

जैसे वैद्य जो दवा दे, वही बढ़िया है, ऐसे ही भगवान् जो विधान करें, वही बढ़िया है।

× × × ×

वस्तु, व्यक्ति, काल आदि सब उस परमात्माके अन्तर्गत हैं। परमात्मा इन सबसे अतीत भी है और इन सबमें परिपूर्ण भी है। जड़तासे ऊँचा उठाना विवेक शक्तिका खास काम है। विवेकको महत्त्व देना हमारा काम है। जो अपने विवेकका आदर नहीं करेगा, वह गुरु, शास्त्र, वेद आदिका भी आदर नहीं करेगा। वह सीख तो लेगा, पर तत्त्वकी प्राप्ति नहीं कर सकेगा।

× × × ×

मनुष्यजन्मका अवसर मिलना बड़ा दुर्लभ है। जो इसका दुरुपयोग करता है, उसे फिर यह मौका नहीं मिलेगा। शास्त्रमें आया है—

अमन्त्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।

अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः॥

‘ऐसा कोई अक्षर नहीं है, जो मन्त्र न हो। ऐसी कोई वनस्पति नहीं है, जो औषधि न हो। ऐसा कोई पुरुष नहीं

है, जो योग्य न हो। परंतु इनका संयोजक दुर्लभ है।’ परमात्मप्राप्तिमें देरीका कारण लगनकी कमी है। जैसे फल तैयार होता है तो उसके पास तोता स्वयं आता है, ऐसे ही आप तैयार हो जायेंगे तो सन्त-महात्मा स्वतः आयेंगे।

× × × ×

हमने शरीरको प्रधानता देकर ‘मैं हूँ’ माना है, चेतनको प्रधानता देकर नहीं। हमें चेतन (‘है’) को प्रधानता देनी है। ज्ञान उत्पन्न नहीं होता; क्योंकि ज्ञानका कभी अभाव नहीं होता। ‘है’ का अनुभव है, करना नहीं पड़ता।

× × × ×

भगवान्की जगह संसारको मान लिया—इस गलतीको मिटाना है। यह असली बात है। संसार नहीं है और परमात्मा है। जो प्रत्येक क्षणमें बदलता है, वह सच्चा कहाँ है? वृत्ति लगाने या हटानेसे तत्त्व कैसे मिलेगा? तत्त्व तो वृत्तियोंसे अतीत है। कोई भी वृत्ति कभी स्थिर नहीं रहती। सबके अभावका अनुभव होता है, पर अपने अभावका अनुभव कभी किसीको नहीं होता।

सनकादिकोंने कहा कि मन संसारमें बस गया और संसार मनमें बस गया तो भगवान्ने कहा—‘**मद्रूप उभयं त्यजेत्**’ (श्रीमद्भा० ११।१३।२६) ‘मेरे स्वरूपमें स्थित होकर दोनोंको छोड़ दो।’ मनको अपना मानना ही दोष है। मन सबका एक है, फिर कुत्तेके मनकी चिन्ता क्यों नहीं होती? अतः ‘स्व’ में स्थित होकर चुप हो जाओ—‘**आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्**॥’ (गीता ६।२५)

कैसी परिस्थिति आये, ‘स्व’ में क्या फर्क पड़ता है? गंगाजीका जल कैसा ही आये, शिलामें क्या फर्क पड़ता है? जबतक जड़का असर पड़ता है, तबतक हमारी स्थिति जड़में है। जड़को हटानेकी चेष्टा करोगे तो उसकी सत्ता दृढ़ होगी। अतः उसकी उपेक्षा करो—‘**शनैः शनैरुपरमेत्**’ (गीता ६।२५)। [समाप्त]

सन्त-उद्बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

मेरे निजस्वरूप साधक महानुभाव! मानवताकी प्राप्तिके लिये निर्मलता, स्नेह और एकता अनिवार्य है। यह तीनों मानवताके ही विशेषण हैं। निर्मलता प्राप्त करनेके लिये सेवा अनिवार्य है। सेवा उसीकी हो सकती है, जिसकी दी हुई कोई भी वस्तु अपने पास हो। जो वस्तु संसारसे मिली है, उसे संसारकी ही सेवामें लगा देना चाहिये। सेवाका फल निर्मलता है, भोग नहीं।

निर्मलता आ जानेपर स्नेहकी अभिव्यक्ति स्वाभाविक है। स्नेहकी पूर्णता भेदको खा लेती है और एकतामें विलीन हो जाती है। इस दृष्टिसे निर्मलता प्राप्त होनेपर स्नेहकी एकता सिद्ध होती है। अथवा यों कहो कि निर्मलतारूपी भूमिमें ही एकतारूपी लता फैलती है और स्नेहरूपी फल लगता है, जो स्वभावसे ही सरस और मधुर है। उस मधुर फलको प्राप्त करना ही मानव-जीवनका उद्देश्य है।

यह बात प्रत्येक साधकको समझ लेनी चाहिये कि हमें मुक्त उसीसे होना है जिससे हमारी जातीय तथा स्वरूपकी एकता नहीं है। इस प्रकार हमें शरीर और संसार दोनोंसे मुक्त होना है। वह तभी सम्भव है जबकि हमारी कोई कामना न रहे, यानी हम अचाह हो जायँ। जिस प्रकार वस्त्रमें जो मलिनता आ जाती है उसीको भिन्न-भिन्न प्रकारसे हटाया जाता है। उसी प्रकार हमने जो अनेक प्रकारके माने हुए सम्बन्ध स्वीकार कर लिये हैं, हमें अपने अलौकिक विवेकके प्रकाशमें उनसे मुक्त होना है।

यह स्पष्ट है कि भविष्यकी आशा उसके लिये की जाती है, जिसके लिये कोई कर्म अपेक्षित हो और कर्म उसीके लिये अपेक्षित होता है, जो उत्पत्ति-विनाशयुक्त हो और जिससे देश-कालकी दूरी हो; परंतु मुक्तिके लिये कोई कर्म अपेक्षित नहीं है; क्योंकि मुक्ति किसी ऐसे

तत्त्वकी ओर नहीं ले जाती, जो सर्वत्र-सर्वदा न हो और जिससे जातीय तथा स्वरूप एकता न हो। मुक्तिका अभिलाषी जब चाहे तब मुक्त हो सकता है। मुक्त होनेमें कोई भी भाई-बहन पराधीन नहीं है, पर कठिनाई तो यह है कि मुक्त होना ही नहीं चाहते।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि मुक्त होनेमें बाधा क्या है? तो कहना होगा कि हम सुख-भोगकी आसक्तिको भी सुरक्षित रखना चाहते हैं और मुक्ति भी चाहते हैं, पर ये दोनों साथ-साथ सम्भव नहीं हैं। सुख-भोगकी आसक्तिको तो मिटाना ही पड़ेगा। उसके लिये हमें सभी कामनाओंकी निवृत्ति करनी होगी और कामनाओंकी निवृत्ति एकमात्र विवेकका आदर करनेपर होती है।

विवेकका आदर करनेकी सामर्थ्य तब आती है, जब हम प्राप्त सुखको दुःखियोंकी सेवामें लगा देते हैं। अपनेसे दुःखीको देखकर ही हमें सुखकी अनुभूति होती है। इस प्रकार सुख दुःखियोंकी देन है। यदि हम प्राप्त सुखको उदारतापूर्वक बिना किसी प्रत्युपकारकी आशाके दुःखियोंकी सेवामें लगा दें, यानी उनकी सेवा कर दें, तो बहुत ही सुगमतापूर्वक सुख-भोगकी आसक्ति मिट सकती है और मुक्त हो सकते हैं।

यह सभीका अनुभव है कि अपनेको देह मानकर कभी भी किसीका मन संसारसे अलग नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि शरीर और संसारमें जातीय एकता और गुणोंकी भिन्नता है। यदि विवेकपूर्वक अपनेको देह न स्वीकार किया जाय, तो मन स्वभावसे ही चिन्तनरहित होकर उस चेतनमें विलीन हो जाता है, जिससे हमारी जातीय तथा स्वरूपकी एकता है।

आप सभी साधक महानुभाव विवेकवान् होकर अमरत्वको प्राप्त करें, इसी सद्भावनाके साथ! 'ॐ आनन्द'

विचारणीय बातें

- ❖ मैं कौन हूँ? कहाँसे आया हूँ? अन्तमें कहाँ जाना है? मैं क्या कर रहा हूँ?
- ❖ मैं जो कर रहा हूँ उसका परिणाम क्या होगा?
- ❖ अन्तमें जो वस्तु मेरे साथ जायगी, उस दैवी सम्पदा (सत्कर्मों)-का संचय कर रहा हूँ या नहीं?
- ❖ मैंने अपने जीवनमें अभीतक कितना पुण्य और कितना पाप कमाया है?
- ❖ वास्तवमें मनुष्य-जीवनका जो कर्तव्य होना चाहिये, वह मैं कर रहा हूँ या नहीं?
- ❖ सांसारिक सुख नश्वर तथा क्षणिक है, इसको मानते एवं जानते हुए भी क्या मैं इसमें लिप्त तो नहीं हूँ?

— आचार्य पं० श्रीजालेश्वरजी महाराज

'बटोही धीरे-धीरे चल'

(श्रीअर्जुनलालजी बंसल)

साहित्यमें वर्णित शृंगार, वीर आदि रस प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें आते हैं, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके जीवनमें भी ये मानवोचित प्रसंग आये। इनमेंसे अनेक प्रसंग ऐसे हैं, जो भावुक मनको विचलित कर देनेवाले हैं। इन हृदयस्पर्शी प्रसंगोंमेंसे एक प्रसंग है—वनपथपर जाते हुए सीताजी और लक्ष्मणके साथ श्रीरामका चित्रण। कमलकोमल श्रीराम-सीता और लक्ष्मणका कंटकाकीर्ण वनपथपर उपानहरहित होकर चलना, ग्रामीण नर-नारियोंका उन्हें देखकर आश्चर्यचकित और करुणा-विगलित हो जाना, सीताजीका थककर बैठनेके लिये कहना आदि वस्तुतः ऐसे मर्मस्पर्शी प्रसंग हैं कि उनका चिन्तनकर हर भावुक हृदय करुणापूर्ण हो जाता है। गोस्वामीजीने इस भावुक स्थलका वर्णन अपनी तीनों प्रमुख रचनाओं—श्रीरामचरितमानस, कवितावली और गीतावलीमें किया है। इनमें भी गीतावलीका वर्णन अत्यन्त ललित है। गीतावलीके आधारपर करुणरसके कतिपय प्रसंग यहाँ प्रस्तुत हैं—

चौदह वर्षपर्यन्त वन-प्रवासके लिये चलते-चलते प्रभु श्रीराम अपनी जीवनसहचरी जनकनन्दिनी श्रीजानकीजी तथा लघु भ्राता लक्ष्मणके साथ प्रयागराजमें प्रवेश करते हैं। उन्होंने यहाँ भरद्वाजमुनिके आश्रममें रात्रिभर विश्राम किया। प्रातःकाल होते ही त्रिवेणी-संगमपर स्नान तथा भगवान् शिवकी पूजा-अर्चनाकर तीनों पथिक चित्रकूटकी ओर चल पड़े। घने वृक्षों और कँटीली झाड़ियोंसे आच्छादित वन-प्रदेशमें नंगे पैर चलते हुए इनकी पीड़ाका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इन गहन वनोंमें कन्धेपर धनुष, कमरमें तरकश, शीशपर जटाओंका मुकुट धारण किये अपनी मनमोहक मुसकानसे प्रकृतिके चित्तको चुराते हुए श्रीराम अपने भाई और पत्नीसहित चलते चले जा रहे हैं। मध्यमें एक अनुपम सौन्दर्यकी स्वामिनी नारीको देख ग्रामीण महिलाएँ उनपर मुग्ध हो रही हैं।

मार्गमें एक अति सुन्दर ग्राम बसा हुआ है। इस ग्रामकी सीमाके बाहर बनी पगडंडीपर जा रहे तीनों पथिकोंका समाचार जैसे ही ग्रामीण महिलाओंको मिला, वे तीव्र गतिसे मनमें उनके दर्शनोंकी अभिलाषा लिये दौड़ी चली आयीं। श्रीरामने जब उन महिलाओंको अपनी

ओर आते देखा तो वे कुछ पलके लिए वहीं रुक गये। ये महिलाएँ जैसे ही प्रभुके समीप पहुँचीं, वैसे ही एक महिला अपने संग आयी अन्य महिलाओंको सम्बोधितकर कहने लगी—

तू देखि देखि री! पथिक परम सुंदर दोऊ।
मरकत-कलधौत-बरन काम-कोटि-कातिहरन,
चरन-कमल कोमल अति, राजकुँवर कोऊ॥
कर सर-धनु, कटि निषंग, मुनिपट सोहैं सुभग अंग,
संग चंद्रबदनि बधू, सुंदरि सुठि सोऊ।
तापस बर बेष किए, सोभा सब लूटि लिए,
चितके चोर, बय किसोर, लोचन भरि जोऊ॥
दिनकर-कुलमनि निहारि प्रेम-मगन ग्राम-नारि,
परसपर कहैं, सखि! अनुराग ताग पोऊ।
तुलसी यह ध्यान-सुधन जानि मानि लाभ सधन,
कृपिन ज्यों सनेह सो हिये-सुगेह गोऊ॥

(गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद १६)

री सखियो! देखो, ये श्याम और गौर वर्णके दोनों पथिक कितने सुन्दर हैं, इनकी शोभाको देख ऐसा जान पड़ता है, जैसे ये कोई राजवंशीय हैं। वीरोंकी भाँति इनके हाथोंमें धनुषबाण और कमरमें तरकस भी शोभायमान हैं। तापस वेष धारण किये इन राजकुमारोंके संग सुन्दरी नारीका दिव्य सौन्दर्य बरबस ही मनको आकर्षित कर रहा है। अपनी सखीके मुखसे ऐसे प्रिय वचन सुनकर एक महिलाने अपने मनके भावोंको सन्त तुलसीके शब्दोंमें इस प्रकार व्यक्त किया—

सखि सरद-बिमल बिधुबदनि बधूटी।
ऐसी ललना सलोनी न भई, न है, न होनी,
रत्यो रची बिधि जो छोलत छबि छूटी॥
साँवरे गोरे पथिक बीच सोहति अधिक,
तिहुँ त्रिभुवन-सोभा मनहु लूटी।
तुलसी निरखि सिय प्रेमबस कहैं तिय,
लोचन-सिसुन्ह देहु अमिय घूटी॥

(गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद २१)

सखि! निर्मल चन्द्रमाके समान सौन्दर्यसे ओत-प्रोत ऐसी नारी न तो भूतकालमें हुई है न वर्तमानमें है और

राजभवनके यतिराज

(आचार्य श्रीसोहनलालजी रामरंग)

‘कौन? कीर्ति!’
 ‘जी, ज्येष्ठ मातुश्री! मैं ही हूँ।’
 ‘तो इतनी रात्रि गये तू प्रासादकी छतपर अकेली क्यों टहल रही है?’
 ‘यूँ ही मातुश्री! तुझे कोई पीड़ा-वेदना है क्या?’
 ‘नहीं, मातुश्री।’
 ‘क्या शत्रुसे कुछ विवाद हो गया है?’
 ‘नहीं, मातुश्री।’
 ‘तो फिर दो प्रहर रात्रि बीते तू अपने शयनागारसे बाहर क्यों टहल रही है?’
 ‘यूँ ही मातुश्री।’
 ‘यूँ ही मातुश्री, यह तो मेरे प्रश्नका उत्तर नहीं है। कीर्ति पुत्रि! तू स्पष्ट क्यों नहीं बोलती?’
 ‘कुछ भी तो नहीं मातुश्रीका क्या अर्थ है? अरी पगली! मैं तेरी धर्ममाता हूँ। मुझे इस प्रकार टहलनेका कोई कारण तो बता?’

राजमाता कौसल्या जो किसी कारणवश रात्रिको उठ गयी थीं, उन्हें शत्रुघ्न-पत्नी श्रुतिकीर्तिको छतपर दो प्रहर रात्रि गये, अकेली टहलते हुए देखकर चिन्तित होना स्वाभाविक ही था। श्रुतिकीर्तिद्वारा अपने किसी भी प्रश्नका युक्ति-युक्त उत्तर न पाकर उनकी चिन्ता शंका में परिवर्तित होने लगी। उन्होंने अत्यन्त व्यग्रतासे फिर पूछा—‘शत्रु कहाँ है?’

राजमाता अपने प्रश्नके उत्तरमें श्रुतिकीर्तिको मौन रहते देखकर हिलती-काँपती तुरन्त दौड़ चलीं। वे सीधी शत्रुघ्नलालके शयनकक्षमें जा पहुँचीं। देखा कि शय्यापर श्वेत फेन-सी चादर तो बिछी हुई है, किंतु वह सूनी है। माँको प्रवेश करते देखकर श्रुतिकीर्ति भी अपने कक्षमें आ गयी। माँ आँखों ही आँखोंमें प्रश्न करने जा रही थीं कि उनकी दृष्टि धरतीपर बिछी हुई चटाईपर गयी। जिसपर कोई तकिया भी नहीं था। वे समझ गयीं कि श्रुति यहीं थोड़ा-बहुत विश्राम अपनी ही बाँहका तकिया लगाकर

करती है, किंतु उन्होंने उत्सुकतावश पुनः पूछा—पुत्रि! मुझे बता तो सही शत्रु कहाँ है?

अब उत्तर देनेको बाध्य हुई श्रुतिकीर्तिके कण्ठसे अटक-अटककर एक-एक शब्द इस प्रकार निकलता हुआ लग रहा था, जैसे कोई अत्यन्त दुर्बल व्यक्ति थका-थका-सा किसी गहरे कूपसे कोई बड़ा-सा जलका भरा हुआ पात्र खींचनेका प्रयत्न कर रहा हो—

‘माँ! जिस दिनसे हम चित्रकूटसे लौटे हैं, आर्यपुत्रने उस दिनसे एक क्षणके लिये भी, कभी एक बार भी इस कक्षमें प्रवेश नहीं किया।’

‘प्रवेश नहीं किया तो वर्षों-वर्ष व्यतीत हो जानेपर भी तूने हमसे यह तथ्य प्रकट क्यों नहीं किया?’

‘क्या तथ्य है, जो प्रकट करती?’

‘तूने कभी पूछा नहीं कि रात्रिभर आप कहाँ रहते हैं?’

‘माँ! मैं पूछती कब और पूछती भी क्यों?’

‘क्यों, क्या कभी वह तुमसे नहीं मिला?’

‘नित्य ही दर्शन करती हूँ। राजसभामें जाते समय, आते समय और पाकशालामें भी। आपकी चरणसेवा करते समय भी।’

‘तो संकेतसे ही पूछती?’

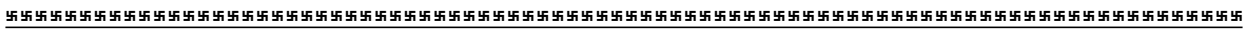
‘उनके नमित विलोचन समस्त प्रश्नोंका स्वतः उत्तर दे देते हैं और फिर मेरे पास करनेको प्रश्न भी कहाँ है?’

‘तो बता वह इस समय कहाँ है?’

अबतक कई परिचारिकाएँ जो वहाँ आ चुकी थीं, उनमेंसे एक श्रुतिकीर्तिको मौन देखकर, उनका संकेत देखकर धीरेसे बोली—

‘ज्येष्ठ मातुश्री! युवराज इस समय सम्भवतः मुख्यद्वारके समीप ही कहीं होंगे। यदि आपकी आज्ञा हो तो हम आपके आदेशसे उन्हें अवगत करायें?’

‘नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं वहाँ जाऊँगी।’ कहती हुई राजमाता कौसल्या तीव्र गतिसे बढ़



चलीं। अभी वे कुछ ही कदम चली थीं कि उनके पैर लड़खड़ाने लगे। परिचारिकाओंने तुरंत उन्हें सम्हाला। श्रुतिकीर्तिने भी निवेदन किया कि वे विश्राम करें। प्रातः भेंट होनेपर चर्चा कर लें, परंतु माँ नहीं रुकीं। वे धीरे-धीरे परिचारिकाओंके कन्धे थामे मुख्यद्वारपर जा पहुँचीं। ज्येष्ठ राजमाताको इस प्रकार आते देखकर द्वारपाल स्तम्भित रह गये। राजमाताने बढ़कर देखा कि राजमुकुट-धनुष-निषंग एक ओर रखे शत्रुघ्न बाँहका तकिया लगाये द्वार-वेदिकाकी एक निर्वस्त्र शिलापर शयन कर रहे हैं। सबसे छोटे सुकोमल राजकुमारको इस प्रकार देखते ही माँकी आँखें बरसने लगीं। शत्रुघ्न तुरंत उठ बैठे। माँ कौसल्याको इस समय इस प्रकार देखकर वे भी सहसा कुछ नहीं बोल पाये। माँके चरणोंमें प्रणाम करते हुए बोले-माँ! आप यहाँ, इस समय?

माँ बिलखते हुए बोलीं—‘अरे! नन्दिग्रामका हठीला और वे दोनों वनवासी तो मेरे भाग्यके शत्रु निकले पर अब मैं जान गयी तुम चारोंके चारों मेरे किसी जन्मके वैरी हो। अरे! तुमने पुत्र बनकर जिस प्रकार मुझे सतानेकी एकसे बढ़कर एक ठानी है, मैं उसकी क्या व्याख्या करूँ? वे आर्यपुत्र तो सचमुच बड़े भाग्यवान् थे, जो यह दुर्दिन देखनेसे पूर्व ही प्रस्थान कर गये परंतु वे बड़े कठोर भी थे जो मुझ पापिनका परित्यागकर तुम-जैसे चार-चार हृदयहीन निष्ठुरोंके मध्य मुझे पल-पल मृत्युकी-सी पीड़ा सहते हुए यह शिला-सी देह ढोनेके लिये छोड़ गये।’

‘माँ! आप क्या कह रही हैं?’

‘हाँ, मेरे शत्रु! तेरी माँ पागल हो गयी रे। जो एक-एक वस्त्राभूषणका परित्यागकर वल्कल धारण किये हुए अपने दो पुत्रोंको राजमार्गसे वनमार्गकी ओर जाते हुए देखकर अंधी नहीं हुई। धरतीके नीचे गह्वरमें ‘सीताराम-सीताराम’ का किसी मन्त्रकी भाँति उच्चारण करते हुए अपने एक पुत्रका स्वर सुनकर भी बहरी नहीं हुई। अपने सबसे छोटे सर्वाधिक सुकोमल पुत्रको इस निर्वस्त्र शिलापर देखकर भी इस शिला-सी निर्जीव होकर धरतीपर नहीं गिर-पड़ी। मिथिलाके राजभवनमें पत्नी,

कमलिनीकी कच्ची कली-सी जानकीको पतिके संग जाते हुए देखकर भी अपने पतिकी चिताकी धू-धू करती हुई लपटोंमें न समाकर, उन्हें इन्हीं आँखोंसे उनमें समाता हुआ देखकर चली आयी। ऐसी हृदयहीनाको विधाता जो भी दण्ड दें, वह अधिक नहीं मानना चाहिये।’

कहते-कहते माँ कौसल्या चेतनाशून्य होने लगीं। शत्रुघ्नलालने उन्हें बाँहका सहारा देकर अपने उत्तरीयको बिछाकर उसपर लिटा दिया। परिचारिकाएँ तुरंत दौड़कर जल ले आयीं। शत्रुघ्नने कुछ मुखमें डाला और कुछ मुखपर छिड़का। धीरे-धीरे माँके तलुवे मलते हुए वे माँकी चेतना लौटा लाये। थोड़ी देरमें माँ धीरेसे उठकर बैठ गयीं। वे अत्यन्त वात्सल्यभावसे शत्रुघ्नलालके कण्ठमें बाँह डालकर बोलीं—‘मेरे प्रिय शत्रु! मेरे लाल! उसे मांडवी-सी गहन मनस्विनी और उर्मिला-सी घोर तपस्विनी मत बना। मेरी कीर्ति मंजुल मृणालिनी-सी तेरी सहधर्मिणी है रे! देख, तो सही जाकर, वह वैरागिन-सी फिर रही है। शत्रु तुझे मेरी...।’

अभी माँ पूरा वाक्य नहीं बोल पायी थीं कि उनका मन्तव्य समझकर शत्रुघ्नलालने उनके मुँहपर हाथ रखते हुए कहा, ‘माँ! यदि तुम मुझे अपनी शपथ दो तो तुम्हें मेरी शपथ है। मेरी इतनी कठिन परीक्षा मत लो। यह रत्नजड़ित मुकुट, ये राजसी वस्त्र मुझे पहले ही नित्यप्रति कम लज्जित नहीं करते, अब और कुछ चाहकर मेरी इस जैसी-तैसी मर्यादाकी राहको अमर्यादित कण्टकाकीर्ण-कालिमामयी मत बनाओ। जिसके तीन-तीन भाई कन्दमूल खा रहे हैं, वह राजसी भोजन कर रहा है। जिसके पिता-जैसे पूज्य अग्रज घोर घाम-भीषण वर्षा-भयंकर शीत खुले आकाशके तले हँसकर झेल रहे हैं, वह सूर्य-महालयके मणिमण्डित प्रासादोंमें पड़ा है। उस निर्लज्जको और लज्जित होनेका अवसर मत दो। माँ! मेरा विनम्र निवेदन बालहठ मानकर ही स्वीकार करो। जिसकी एक अग्रजा वनको राजभवन मानकर सस्मित विहार कर रही हो और दो अग्रजा राजभवनको विजन वनकी भाँति ताकती हुई विस्मित-सी बैठी हों, उनकी अनुजाका शय्या-शृंगार



कराकर, उसके संचित होते हुए पुण्योंको प्रायश्चित्त-विहीन पापोंके गहन गर्तमें समाधिस्थ होनेको विवश मत करिये।'

'शत्रुघ्न! तू अयोध्याकी लाजका रक्षक है। शत्रुघ्न! तू रघुकुलके गौरवका संरक्षक है। शत्रुघ्न! तू राजोचित कर्तव्यका पालक है, इन अनाथ होती हुई प्रजाओंका सब प्रकारसे समर्थ नाथ सिद्ध हुआ है।' 'माँ! यह इस अकिंचनकी गरिमा नहीं, अपितु आपके श्रीचरणोंके आशीर्वादकी महिमा है।'

'शत्रुघ्न! मैंने इन आँखोंसे इस अयोध्याको राक्षसोंसे पददलित और शनिके प्रकोपसे प्रजाओंको भूख-प्याससे विकल होते हुए देखा है। किंतु अब आजकी इस अयोध्याको भी देख रही हूँ, जिसके मूर्धाभिषिक्त सम्राट् जलपर खिँची हुई रेखासे चले गये और उसीका एक युवराज राजा बननेसे पूर्व और दूसरा होनेवाला महाराज राजचिह्नोंके स्पर्शसे पूर्व स्मृतियोंपर अंकित होनेवाली वज्ररेखाओंको रज-रेखा-सी उड़ाकर चला गया। उन जल-रेखा और रज-रेखाओंपर मेष लगानेकी कीर्ति तुझे ही प्राप्त हुई है।'

'माँ! धर्म और स्नेहमेंसे सद्धर्मका वरणकर भयंकर

कलहाग्निको यज्ञाग्नि बनानेका जो आदर्श आपने स्थापित किया है, यह उसीका प्रतिफलमात्र है। यदि अन्तःपुरकी प्रजाओंको आपने न सम्हाला होता तो इस पुरकी प्रजाओंको कौनसे दुर्दिन न देखने पड़ते, उनकी कल्पना करते ही हृदय प्रकम्पित हो जाता है। चित्त विक्षिप्त और बुद्धि भ्रमित हो जाती है। अन्तमें मेरी महिमामयी माँ! मेरी आपके श्रीचरणोंमें प्रणाम करते हुए यही याचना है कि आप अपने स्वरूपका स्मरण करें। आप स्नेहके कारण तृणके समान तनका परित्याग करनेवाले महापुरुषकी सहधर्मिणी हैं और धर्मके कारण राजसिंहासनको निर्जन वनपर न्यौछावर करनेवाले युगपुरुषोंकी जननी हैं। आप सद्धर्मको भौतिक सुखोंकी वेदीपर बलिपशु बनानेकी प्रेरणा मत दो।'

कहते-कहते शत्रुघ्न माँ कौसल्याके चरणोंमें लोट गये। माँने अत्यन्त कठिनतासे शत्रुघ्नको उठाकर अपनी छातीसे लगा लिया। उनके मुँहसे चलते-चलते धीरेसे केवल यही शब्द निकले कि 'भावी रामराज्यके सुदृढ़ दुर्गाकी नींवकी शिलाका नाम शत्रुघ्न है किंतु उसके गगनचुम्बी शिखरको देखकर इस नींवकी शिलाका मूल्यांकन कौन-सा युग, न जाने कब करेगा?'

देह रहते हुए विदेही क्यों ?

(श्रीशरद् चन्द्रजी पेंढारकर, एम०ए०)

प्रेरक-प्रसंग—

महाराजा जनकके एक मन्त्रीने उनसे एक दिन पूछा, "महाराज! आप देहधारी होकर भी 'विदेही' क्यों कहे जाते हैं?" जनकने उत्तर दिया कि वे इसका जवाब कुछ दिनोंके पश्चात् देंगे।

एक दिन राजाने एक दूतको प्रातः बुलाकर उससे कहा, "जाओ, शहरमें ढिंढोरा पीट आओ कि मन्त्रीके हाथों अपराध होनेके कारण उसे ४ बजे शामको सूली दी जायगी।" साथ ही मन्त्रीको उसी दिन सुबह १० बजे भोजनका निमन्त्रण दिया।

मन्त्री नियत समय भोजनके लिये पहुँचा। राजाने नाना प्रकारके पदार्थ बनवाये थे, किंतु उसमें जान-बूझकर नमक बिलकुल भी न डाला था। मन्त्रीका ध्यान सूलीकी तरफ था। उससे वे सारे पदार्थ खाये नहीं जा रहे थे, किंतु बेचारा मजबूर था। भोजनके पश्चात् महाराजा जनकने उससे प्रश्न किया, "किसी चीजमें नमककी कमी तो न थी?" मन्त्रीने डरते हुए जवाब दिया, "महाराज, मौतके भयके कारण मुझे भोजनका कुछ भी स्वाद मालूम न हुआ। मैं यह न समझ सका कि कौन-सी चीज मीठी थी, कौन-सी खट्टी और कौन-सी फीकी।"

तब राजा जनकने कहा, "मन्त्रीजी, भोजन करते समय आपको मालूम हो गया था कि कुछ ही घण्टोंमें आपको सूली दी जानेवाली है, अतः आप देहके होते हुए भी 'विदेही' हो गये थे। फिर मैं तो अपनी देहके अस्तित्वपर क्षणभरके लिये भी विश्वास नहीं करता। इसलिये यदि लोग मुझे 'विदेही' कहें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या।"



सुख-सन्तोषका जीवन कैसे जीयें

(डॉ० श्रीकपिलदेवसिंहजी, पी-एच०डी०)

[गतांक पृ०सं० ६२० से आगे]

आजके दूषित वातावरणमें उत्तम आचरण और विचारोंकी रक्षा कैसे हो, जबकि एक पक्ष उन्मत्त होकर दूसरे पक्षको हर तरहसे दुःख देने और उसका अहित करनेपर उतारू है? इसका जो उत्तर सत्पुरुषोंने दिया है, वह इस प्रकार है। इसमें दो राय नहीं कि संसारमें समूची नातेदारी, रिश्तेदारी, प्रेम, मेल-जोल सब स्वार्थका सौदा है। जिसका जबतक जिससे स्वार्थ सधता है; तबतक वह उसका है, उसके बाद पराया हो जाता है। यह ध्यान रखना चाहिये कि हम अकेले आये हैं और अकेले ही हमको जाना है तथा अपनी करनीका फल भी अकेले ही भोगना है। सभी सुखके साथी हैं। अतः प्रत्येक व्यक्तिको केवल अपने ही स्वार्थमें तल्लीन न रहकर दूसरोंके हितका सदैव ध्यान रखना चाहिये, अन्यथा एक-दूसरेके स्वार्थ परस्पर टकराते रहेंगे और आपसमें संघर्ष, मनमुटाव, हिंसा-प्रतिहिंसा आदिकी प्रवृत्तियाँ बढ़ती रहेंगी। हमारा कर्तव्य बनता है कि जहाँतक हो, हम अपना स्वार्थ समेटें और सबसे हिल-मिलकर चलें। कहा है—

चार वेद षट् शास्त्र में बात मिली है दोग।

दुख दीन्हें दुख होत है सुख दीन्हें सुख होय॥

दूसरी बात जो सत्पुरुषोंने कही है, वह यह कि वास्तवमें किसीका अहित दूसरेके द्वारा हो ही नहीं सकता, दूसरा निमित्त भले ही बन जाय। 'मानस' में आया है—
'काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥'

यही बात दूसरी जगह भी कही गयी है—

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता

परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।

अहं करोमीति वृथाभिमानः

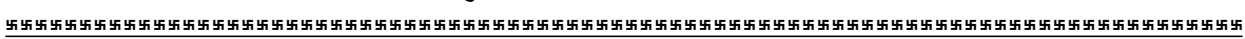
स्वकर्मसूत्रे ग्रथितो हि लोकः॥

अर्थात् सुख-दुःख देनेवाला दूसरा कोई नहीं है। दूसरा दुःख देता है, यह समझना कुबुद्धि है। मैं करता हूँ, यह वृथा अभिमान है। सब लोग अपने-अपने कर्मोंकी डोरीसे बँधे हुए हैं। इसलिये सुख-दुःख अपने ही पूर्वकृत कर्मोंका फल समझना चाहिये।

सत्पुरुष जो तीसरी बात बताते हैं, वह यह है कि इस जीवनके एकमात्र आधार भगवान् ही हैं। विश्वरूपसे वे ही सब प्राणी-पदार्थोंमें विराजमान हैं—'वासुदेवः सर्वमिति' (गीता ७।१९)। अर्थात् वासुदेवके सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं। जब सब वे ही हैं, सब उन्हींका रूप है, तब 'अनेकरूपरूपाय'—ऐसा समझकर हमें सबसे निर्वैर रहनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये। यदि हम दूसरोंसे प्रेम करेंगे तो अवश्य प्रेमका प्रतिदान होगा। अपनेमें बदलाव लाये बगैर दूसरोंमें बदलावकी आशा करना अनुचित है। यदि किसीके साथ किसी बातको लेकर कुछ अनबन हो जाय और बर्तावमें दोष आ जाय तो श्रेष्ठ पुरुषोंका मानना यह है कि बुद्धितत्त्वका सहारा लेकर व्यर्थका तर्क-वितर्क और वाद-विवाद करते रहनेसे कोई लाभ नहीं होता, बल्कि उसके साथ मैत्रीपूर्ण ढंगसे व्यवहार करनेपर ही सफलताके संयोग अधिक प्राप्त होते हैं। हजारों वर्षसे सत्-पुरुष यही कहते आ रहे हैं कि बुराईको अच्छाईसे ही जीता जा सकता है। इन्हीं विचारोंको लेकर चलनेसे हम अपने उत्तम आचरण और नैतिकताकी रक्षा कर सकते हैं।

मनुष्यको सुख-सन्तोष और सफल जीवनके लिये विनम्र बनना अति आवश्यक है। विनम्रता सब गुणोंकी जननी मानी गयी है। यह गुण जिस व्यक्तिमें नहीं होता, उसमें कोई गुण टिक ही नहीं सकता। विनम्रतासे लाभ-ही-लाभ होता है। 'लघुतासे प्रभुता मिले, प्रभुतासे प्रभु दूर।'

कठोरता और हठपूर्ण अभिमानको जीवनसे हटा देनेपर ही जीवनका रस दिखायी देता है। जीवन हलका और प्रसन्न रहता है। वरना जरा-सी अकड़, जीभके डंकरूपी दो तीखे-कडुवे शब्द सुहावने वातावरणको दूषित और विषाक्त कर देते हैं। इसीसे आज कितने घर-कुटुम्ब नित्य टूट रहे हैं। विनम्रताको किसी व्यक्तिकी कमजोरी समझनेवाला व्यक्ति अहंकारी होता है। वह सदा दुःखी रहता है और अशान्तिमें जीता है। हठी, अहंकारी और पूर्वाग्रही व्यक्ति न उचित-अनुचितका सही निर्णय ले पाता है और न सामाजिक मर्यादाका पालन ही कर पाता है।



ऐसे लोगोंकी अपनी इच्छाएँ ही सब कुछ होती हैं। वे न तो स्वभावके ही नरम होते हैं और न उनके विचार ही सहानुभूतिपूर्ण। वे विवेकसे काम नहीं लेते। हठपूर्वक अपनी इच्छाओंकी ही पूर्ति चाहते हैं, चाहे वे कितनी ही असंगत और अकल्याणकारी क्यों न हों। इस प्रकार वे स्वयं दुःखी रहते हैं और दूसरोंको भी दुःख देते हैं, चाहे वह उनका कितना ही अपना सगा क्यों न हो।

मनुष्यको अपने जीवनमें थोड़ा परोपकारकी प्रवृत्ति यथाशक्ति बनाये रखनी चाहिये। इसके बहुतसे रूप हैं। हमारे दो मीठे सहानुभूतिपूर्ण शब्द भी जो हम किसी दुःखमें पड़े व्यक्तिसे बोलते हैं, वह भी परोपकार ही है। आज तो कितने वृद्धलोग अपनोंकी बेरुखीसे ही दुःखी रहते हैं। ईश्वरसे हम सुख-शान्तिके लिये प्रार्थना करते हैं, पर पाते इसलिये नहीं कि इस गुणको—परोपकारकी भावनाको, स्वयं कार्यरूपमें हमने उतारा ही नहीं है। ईश्वर फल तो केवल हमारे कर्मोंका ही देता है। जब हमने दूसरोंको सुख-शान्ति दी ही नहीं है, तो मिलेगी कहाँसे। जो हम बोयेंगे, वही तो काटेंगे।

संसारमें मनुष्यका जीवन अन्तहीन जटिल समस्याओंसे घिरा हुआ रहता है। उन परेशानियोंके बीच वह स्वयंको चिड़चिड़ा, कुण्ठित एवं तनावग्रस्त महसूस करता है। ऐसे समयमें हमें अपने मनको वशमें रखकर सँभलकर चलनेकी आवश्यकता होती है। ऐसे समयमें हमें उदारता, आपसी सहानुभूतिका आश्रय लेना चाहिये। कभी-कभी हम छोटी-सी समस्याको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं और परेशान हो जाते हैं। यदि हम ठहरेँ और समय गुजरने दें तो धीरे-धीरे छोटी-बड़ी सभी समस्याएँ समयके साथ स्वयं समाप्त हो जाती हैं। हमें उतावला नहीं होना चाहिये। दूसरे, हमें यह आशा नहीं करनी चाहिये कि सब हमारी ही बात मानें। यदि हम ऐसा सोचेंगे तो दुःख और अपमानबोधके सिवाय कुछ हाथ नहीं लगेगा। अपनेको हम जितना कम-से-कम समस्याओंमें उलझायेंगे और उनपर जितना ही कम-से-कम सोचेंगे-बोलेंगे, उतनी ही शान्ति पा सकेंगे। इसलिये जगत्के प्रपंचोंको मनमें कम-से-कम आने दें और यदि आते हैं तो उन्हें बराबर बाहर निकाल फेंकते रहें तथा उनके स्थानपर भगवान्की उपस्थितिका अनुभव करें। उनसे प्रार्थना करें कि वे हमारी कमजोरियोंको दूरकर हमें कठिनाइयोंसे बचायें; क्योंकि वे ही जीवके सच्चे-निःस्वार्थ हितैषी हैं।

भगवान्का अपनेमें चित्त लगानेवालेके लिये आश्वासन है—

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादान्तरिष्यसि।

अथ चेत्त्वमहङ्कारान् श्रोष्यसि विनश्यसि ॥

(गीता १८।५८)

अर्थात् तू मेरेमें निरन्तर मनवाला हो, मेरी कृपासे सब संकटोंको अनायास ही तर जायगा और यदि अहंकारके कारण मेरे वचनोंको नहीं सुनेगा तो नष्ट हो जायगा। इसीलिये सन्त और महापुरुष बराबर कहते आ रहे हैं कि मनमें चाहे कितनी प्रकारकी चिन्ताएँ, विषाद और व्याकुलता हो और इन सबके होनेमें चाहे कितने ही कैसे भी कारण क्यों न हों, इन सबका नाश भगवान्का आश्रय ग्रहण करनेसे हो जायगा। यह निश्चित है।

भगवान्का आश्रय और उनमें आत्मीयताका भाव कि वही एकमात्र हमारे हैं—यह सर्वश्रेष्ठ कल्याणकारी भाव तो है ही इसके अतिरिक्त दो और विचार सुख-शान्ति देनेवाले कहे जाते हैं। उनमें एक है अपनी 'मौत' को बराबर याद रखना। सबको इस संसारको छोड़कर एक दिन जाना है—

जाना है, रहना नहीं, जाना विस्वा बीस।

थोड़े दिन की जिन्दगी, भज ले श्रीजगदीस ॥

सहस्रबाहु और रावण—जैसे महाबली भी कालसे नहीं बच पाये। हमारे पूर्वज, इष्ट-मित्र और सगे-सम्बन्धी आँखोंके सामने देखते-देखते चले गये और चले जा रहे हैं। हमें भी एक दिन सब कुछ यहीं छोड़कर हाथ-पसारे जाना है। अन्तमें, सबको यही दशा प्राप्त होती है। संसारकी कोई वस्तु साथ नहीं जाती—'सिकन्दर जब चला दुनियासे दोनों हाथ खाली थे।' मरनेके बाद जीवको वहाँ पहुँचकर अपने कर्मोंका हिसाब देना होता है। अपने किये हुए कर्मोंके फलस्वरूप ही मनुष्य अगले जन्ममें भोग भोगता है। यदि हम इस विचारको बराबर अपने मनमें रखेंगे तो हमारे जीवनका, कार्य करनेका दृष्टिकोण ही बदल जायगा। असत् एवं पापकर्म करनेमें ग्लानि होने लगेगी और जीवन सुख-सन्तोषमय बन जायगा।

दूसरा है 'होनी'; जिसे प्रारब्ध, भाग्य, किस्मत, पूर्वकर्म आदि भी कहते हैं। उसपर विश्वास रखना। सभीका यह मानना है कि 'होनी' तो होकर ही रहती है, चाहे कोई कितना प्रयत्न कर ले। संसारके सुख-दुःख,

प्रसन्नता—एक जीवन-दर्शन

(डॉ० श्रीविद्याभास्करजी वाजपेयी)

प्रसन्नता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। वह हमारे वशमें है। उसे हम जब चाहें प्राप्त कर सकते हैं। जिसने प्रसन्नताका महत्त्व न समझा, उसके अभ्युदयके द्वार बन्द हो जाते हैं, किंतु उदास-निराश होकर हम अपनी जिन्दगी यों ही गवाँ देते हैं। तृष्णा सारी सुख-सुविधाओंका हनन कर देती है। पास जो कुछ है, उससे सन्तोष नहीं होता। हम यह नहीं सोच पाते कि जितना जो कुछ मिला है, वह प्रसन्नताके लिये पर्याप्त है। तृष्णा कभी वृद्ध नहीं होती। इसके जालमें पड़कर मनुष्य अपनी प्रसन्नता खो बैठता है।

उदासी जीवनके ऊपर छा जानेवाली मृत्यु-जैसी आँधियारी है। यह अकस्मात् हमारी जीवन-शक्तिका ह्रास करती है। यह शरीरमें शिथिलता उत्पन्न करनेवाली राक्षसी है। मनमें अधिक देरतक रहनेके कारण उदासी स्थायी बन जाती है और मानसिक रोगोंका कारण बनती है। इस रोगका रोगी गम्भीर निराशासे घिर जाता है। उसके अंग शिथिल और मन भारी हो जाता है। चारों ओर दुर्भाग्यकी परछाइयाँ नाचने लगती हैं। बेचैनी बढ़नेपर शरीर भारी, इन्द्रियाँ गिरी-गिरी-सी और आँखोंमें थकान-जैसे दोष उत्पन्न हो जाते हैं। उमंग, उत्साह और प्रेरणा लुप्त हो जाती है। जगत् जंजाल लगने लगता है और परिवार भारस्वरूप। किसी कार्यमें रुचि नहीं रह जाती। लोगोंसे मिलने-मिलानेमें भी संकोच होता है।

उदासी, जीवन-पुष्पको मुरझा देनेवाला भयानक झंझावात है। उदासी आनेपर हृदयकी कोमल, कमनीय भावनाएँ कुम्हला जाती हैं। विहँसती हुई महत्त्वाकांक्षाएँ विसूरने लगती हैं। पुलकती हुई सद् प्रवृत्तियाँ मन मारकर बैठ जाती हैं। उदासी छा जानेपर चित्त क्लान्त, व्यग्र और चिन्तित हो उठता है। शरीर धारण किये रहनेकी भी इच्छा नहीं होती, जीवनमें घोर नैराश्य छा जाता है।

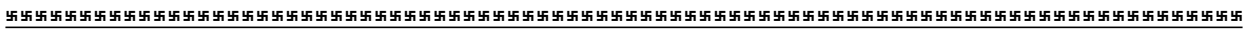
इसके विपरीत प्रसन्नता अपनाकर मनुष्य संघर्षमय, कर्तव्य-प्रधान कठोर जीवनको सफल एवं दिव्य बना सकता है। हँसना, खिलखिलाना जीवनका सौन्दर्य है, सौरभ है। जो व्यक्ति आनन्दकी इस खानको जान लेता है,

उसे श्रेष्ठ वातावरणकी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। वर्तमान समयमें जो परिस्थिति उसके सामने होती है, उसीमें वह सुखका अनुभव करता है। असन्तुलित मनुष्य सोचता है कि जब उसे धन मिलेगा तभी वह सुखी होगा। लेकिन धन कभी किसीको सुखी नहीं बनाता। सुखी बनाती है— आन्तरिक प्रसन्नता। उसके फूटते ही मनुष्य हर परिस्थितिमें सुखी दिखायी देता है। स्वर्गकी चाह है तो आत्माको आनन्दके जलसे स्नान कराना ही होगा। स्वर्ग कहीं और नहीं मनुष्यके अन्दर ही छिपा होता है। अन्तरके आनन्दसे मनुष्य अनन्त आनन्द प्राप्त कर सकता है।

प्रसन्नता मनुष्यके हृदयका भण्डार खोलती है। लघुतासे महानता और न्यूनतासे उच्चताकी ओर ले जानेवाले गुणोंका विकास करती है। यही वह सोना है, जिसमें ढलकर मनुष्य अपना सर्वतोमुखी विकास कर सकता है। जीवन-यापनके लिये जिस प्रकार उसे धन, वस्त्र, भोजन और जलकी आवश्यकता होती है, वैसे ही उसे उत्साहसम्पन्न, स्फूर्तिदायक और प्रगतिशील बनानेके लिये प्रसन्नता अपेक्षित है। प्रसन्न और सन्तुष्ट रहनेवाले व्यक्ति ही ज्योतिपुंज बनकर दूसरोंका मार्गदर्शन करनेमें सफल होते हैं। प्रसन्नता उस चतुर किसानकी तरह है, जो अपने खेतसे झाड़-झंखाड़ोंको उखाड़कर सद्गुणोंके सुन्दर वृक्ष लगाता है।

उदासी कुरूपता और तनावकी सृष्टि करती है। उदासीमें मुख-कान्ति धूमिल पड़ जाती है। मानसिक शक्तियोंका ह्रास होने लगता है। उदासी प्रायः शारीरिक तथा मानसिक थकानका भी कारण बनती है। एक ही कार्य करते-करते अथवा एक ही परिस्थितिमें रहते-रहते मन ऊबने लगता है तो उदासी दूर करनेके लिये नये कार्य अपनाये जा सकते हैं। नयी परिस्थितियाँ गढ़ी जा सकती हैं। लोगोंसे सम्पर्क स्थापितकर नयी दिशा अपनायी जा सकती है।

जीवनयात्रामें मनुष्यको अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ सकता है, पर हँसीका अमृत पानकर



है। पाचन और श्वसनसंस्थानमें भी उसका अच्छा प्रभाव पड़ता है। रसग्रन्थियाँ पाचक रसका प्रचुरमात्रामें निर्माण करती हैं। शरीरके जीवनतत्त्व सक्रिय हो जाते हैं। शिथिलता दूर होती है और तनाव समाप्त हो जाता है।

गीत-संगीतमें ऐसी उत्फुल्लकारिणी शक्ति होती है—जिससे उदासी दूर होकर ताजगी आ जाती है। स्वच्छ वातावरणमें रहना, टहलना भी उदासी दूर करता है। सच कहा जाय तो हमारी आजकलकी जीवन सभ्यता बनावटी आवरणसे इस प्रकार जकड़ी हुई है कि हम प्रकृतिके मनोरम दृश्यों, सरिता-तटों और लहलहाते उद्यानोंकी शीतल छायामें जानेकी अनदेखी कर देते हैं। प्राकृतिक वातावरणमें टहलने, निवास करनेसे मानसिक यातनाएँ दूर होती हैं और चिन्ताओंके पर्वत चूर-चूर हो जाते हैं।

उन्नतिके पथपर चलनेवाले साधकोंके लिये प्रसन्न और प्रफुल्लित रहना साधनाका प्रथम चरण है। प्रत्येक बातमें निर्मल हास्य-विनोदका एक पहलू होता है। यह एक ऐसा गुण है, जो आस-पासके लोगोंमें प्रफुल्लता उत्पन्नकर उन्हें आनन्दित कर देता है। यह देखा जाता है कि रोग उत्पन्न होनेपर मनुष्य कभी अपने अतीत और कभी अपने भविष्यके बारेमें विश्लेषण करने लगता है। बे-सिर-पैरकी कुकल्पनाएँ आ घेरती हैं। मनुष्य चिन्ताओंको अपने मस्तिष्कमें डेरा जमानेके लिये आमन्त्रित कर लेता है। परिणामस्वरूप निश्चिन्त जीवन स्वप्न बनकर रह जाता है। सूक्ष्मतासे अवलोकन किया जाय तो चिन्ताएँ अस्तित्वहीन होती हैं। चिन्ता एक भयानक मनोरोग है, जो अन्यान्य अनेक शारीरिक और मानसिक कष्टोंको भी ले आता है। इससे मुक्त होनेका एक ही उपचार है कि परिस्थितियोंके दूसरे पक्षको भी देखना, जो हास-परिहासपूर्ण हैं। पर्यवेक्षण करनेपर पता चलता है कि जिन्हें बड़े अवरोधके रूपमें कल्पित किया गया था, वे मात्र छोटी-मोटी समस्याएँ थीं। महत्त्वहीन बातोंको बहुत महत्त्व दे दिया गया था, जिनका न कोई आधार था न उद्गम।

लक्ष्यपर विचार किया जाय तो किसी भी परिस्थितिमें आशावादी दृष्टिकोण सन्तोषवृत्ति एवं उत्साहको अपनाते हुए प्रसन्न रहा जा सकता है। विपरीत परिस्थितियोंमें ही मानसिक समरसता बनाये रखना चित्तकी प्रसन्नताकी

कसौटी है। अनुकूल परिस्थितियोंमें तो सभी मोद मनाते हैं। मनकी प्रसन्नतासे जीवनीशक्तिको बल मिलता है, वृद्धि होती है। रोगोंसे संघर्ष करनेकी क्षमता बढ़ती है। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियाँ सभीके जीवनमें आती हैं। किसी महापुरुषके जीवनमें ऐसा नहीं हुआ कि सदैव उन्हें अनुकूलताएँ, सुविधाएँ मिलती रही हों। वास्तविकता तो यह है कि उन महापुरुषोंको अत्यधिक प्रतिकूल परिस्थितियाँ मिलती रही हैं और उस स्थितिमें भी वे हँसते-हँसते—उनका सामना करते हुए आगे बढ़े हैं। भयंकर प्रतिकूलताओंमें ही उनकी प्रतिभा निखरी है।

प्रसन्नता सभी सद्गुणोंकी जननी है। चित्तकी प्रसन्नता ही व्यवहारमें उदारताका रूप ले लेती है। प्रसन्नचित्त व्यक्ति दीर्घायु होते हैं। प्रसन्नताको हम जितना अधिक लुटायेंगे, उतनी ही वह हमारे पास आयेगी। प्रसन्नचित्त व्यक्ति अपने कार्यमें असफल नहीं होता। सदैव प्रसन्न रहनेसे मनमें अच्छे विचार आते हैं और चित्त शुभ कर्मोंकी ओर अग्रसर होता है। दुनियामें प्रसन्न रहनेका एक ही उपाय है कि अपनी जरूरतोंमें कटौती की जाय। प्रसन्नता स्वास्थ्य है और उदासीनता रोग। श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—‘चित्त प्रसन्न रहनेसे सब दुःखोंकी निवृत्ति हो जाती है। जिसको आन्तरिक प्रसन्नता प्राप्त हो जाती है, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।’

गांधीजीने प्रसन्नता एवं हँसीके सम्बन्धमें लिखा—‘हँसी हमारे मनकी गाँठें खोल देती है। हमारे ही मनकी नहीं सबके मनकी। हँसी हृदयकी ऐसी पवित्र गंगा है, जो सबको शीतलता प्रदान करती है। भीतरका विषाद और अवसाद हँसीके तेज झोंकोंसे रूईके कतरोंकी तरह नष्ट हो जाते हैं।’

खिलखिलाकर हँसनेकी आदतसे शरीर निरोग रहता है। हँसनेसे फेफड़े मजबूत होते हैं। हँसनेसे मनके विकार दूर हो जाते हैं। श्रीकेरीबोरने तो हँसी और उल्लासको यौवनकी संज्ञा दी है। उनका कथन है—‘हास्य यौवनका शृंगार है, जो व्यक्ति यौवनका शृंगार नहीं कर सकता, उसके पास यौवन कैसे टिक सकता है?’ हँसनेका—प्रफुल्ल रहनेका स्वभाव बनाइये, यौवन सदा आपका साथ देगा।



जॉर्ज बर्नार्ड शॉने एक स्थानपर कहा है—‘हँसीकी ही सुकोमल, मधुर भूमिपर यौवनके पुष्प खिलते हैं और जीवनको सुगन्धसे भर देते हैं। जवानीको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये खूब जी खोलकर हँसा कीजिये।’

कैलीफोर्नियाकी एक अमीर महिला ‘सिम्पसन’ बहुत समयतक उद्विग्न तथा चिन्तित रहनेके कारण अनिद्रा रोगसे ग्रसित हो गयी। उसे अपना जीवन असह्य लगने लगा। उसको एक चिकित्सकने भारी फीस वसूलनेके बाद एक रामबाण उपाय बताया। उसने कहा—‘वह दिनमें कम-से-कम तीन बार खूब खिलखिलाकर हँसा करे।’ चिकित्सकके निर्देशानुसार उसने बिना किसी कारण खिलखिलाकर हँसना शुरू कर दिया। केवल इसीसे कुछ दिनोंमें उसे ठीक प्रकारसे नींद आने लगी और स्वास्थ्यमें आश्चर्यजनक लाभ हुआ।

अंग्रेजीके प्रसिद्ध उपन्यासकार ड्राइडनका कथन है— ‘हँसना, प्रसन्न रहना एक बहुत ही अच्छी विशेषता है। इस विशेषताके कारण वह जिन्दगीका भरपूर लाभ उठा सकता है। निराशा, कुण्ठा और उदासी उसके पास नहीं फटकती।’

‘मार्शियल’ ने कहा है—‘आप बुद्धिमान् हैं तो हँसिये, प्रसन्न रहिये। आपकी पलभरकी प्रसन्नता वर्षोंकी उदासी दूर कर सकती है।’ ‘आत्माके परिष्कार, मन:-

सन्तुलन और स्वस्थ रहनेके लिये प्रसन्नता एवं हास्यका महत्त्वपूर्ण स्थान है। जी खोलकर हँसना स्वयंमें एक बहुत बड़ा टानिक है। हँसते रहनेवाले व्यक्तियोंका शारीरिक एवं मानसिक तथा आत्मिक विकास अप्रत्याशित ढंगसे होता है। उदासीभरा जीवन एक भ्रान्ति है और प्रसन्नतापूर्ण जीवन उल्लास है।’

प्रसन्नता-मर्मज्ञ श्रीयोन नागोचीकी प्रार्थना कितनी महत्त्वपूर्ण है! वे ईश्वरसे विनय करते हैं—‘हे प्रभु! जब जिन्दगीके कगारोंकी हरियाली सूख गयी हो, पक्षियोंका कलरव बन्द हो गया हो, सूरजपर ग्रहणकी छाया गहरी होती जा रही हो, परखे हुए मित्र और आत्मीय जन काँटों-भरे रास्तेमें अकेला छोड़ गये हों और आसमानकी नाराजगी मेरी तकदीरपर बरसनेवाली हो तो प्रभु! तुम मुझपर इतना अनुग्रह अवश्य करना कि मेरे होठोंपर हँसीकी एक उजली रेखा रहने देना।’

अतः हमें भी चाहिये कि हम अर्जुनकी तरह जिन्दगीकी डोर प्रभुके हाथोंमें सौंपकर कष्टोंसे छुटकारा प्राप्तकर सदा प्रसन्न रहनेका स्वभाव बना लें। जब मैं ऐसा सोच रहा था, तभी महाराज-घाटकी सीढ़ियोंपर बैठा एक फक्कड़ गा उठा—‘तेरा रामजी करेंगे बेड़ा पार उदासी मन काहे को करै?’

‘मूढ़ मन तजत न विषय-विकार’

(पं० श्रीदेवकृष्णजी पाण्डेय)

●	मूढ़	मन	तजत	न	विषय-विकार।	●
●	याते	संसृति	दुख	बहु	झेलत	●
●	आधि-	व्याधि		की	मार।	●
●	मन	मन्दिर	श्रीहरि	निवास	हित	●
●	घुस्यो		चोर		बटमार।	●
●	इनहिं	भगाए	बिन	हरि	कैसे	●
●	आवैं	मन		के	द्वार।	●
●	नाम	शलाका		जारि	नसावै	●
●	विषय	भूत		को	ज्वार।	●
●	बिनु	हरि	कृपा	न	सुलभ ‘मुरारी’	●
●	भुक्ति		मुक्ति	सुख	सार।	●
●	मूढ़	मन	तजत	न	विषय-विकार।	●



क्षीरसागर

(सुश्री आशा सक्सेना)

क्षीरसागर अर्थात् अमृतका सागर, हृदय ही क्षीरसागर है और यहींपर विष्णुभगवान् विश्राम कर रहे हैं। हमें इसी क्षीरसागरका मन्थन करके अमृत प्राप्त करना है। अमृत अर्थात् जिसका कभी भी मरण न हो अर्थात् सच्चा ज्ञान प्राप्त करना है। सच्चा ज्ञान केवल परमात्मा ही है जो सदासे था, आज भी है और हमेशा रहेगा। इसी क्षीर-सागरमें चौदह रत्न भी हैं। इसीमें असुर और देवोंका वास भी है, असुर हैं खराब वृत्तियाँ और देव हैं अच्छी वृत्तियाँ—सदाचार, परोपकार, सद्विचार, दया, ईश्वरपर विश्वास आदि। इन्हींपर चलकर मनुष्य देवतुल्य बन जाता है। शरीर और इन्द्रियाँ अपने लिये नहीं मिली हैं, बल्कि संसारका कार्य करनेके लिये मिली हैं। संसारका हित सोचकर कार्य करते रहना चाहिये। ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार सबको संसारकी सेवामें लगाते रहना चाहिये। यदि ये सब संसारकी सेवामें रहेंगे तो कोई भी अनुचित कार्य होगा ही नहीं। यदि ये ही सब स्वयंकी सेवामें रहेंगे तो खराब वृत्तियाँ बलवती होने लगेंगी, फिर ये वृत्तियाँ ही मनुष्यको असुर बना देती हैं।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मद, मत्सर—यही इस क्षीरसागरसे निकला विष है, जिस मनुष्यने इन वृत्तियोंपर विजय पायी है, वही शंकर-सदृश हो गया और यही विषपान करना है। जो सदाचारी है, परोपकारी है, हर किसीमें भगवान्को देखता है, दूसरेका दर्द देखकर दुःखी होता है और उसे सुखी करनेका प्रयास करता है, सत्यका आचरण करता है तथा जिसके अन्दर भक्ति है, वही देवरूप है। अच्छी वृत्तियोंसे सम्पन्न व्यक्ति ही देवरूप कहलाता है। अच्छी वृत्तियाँ कभी नष्ट नहीं होतीं, हम नित्यके अभ्याससे इन्हें बढ़ा सकते हैं। यही अमृत है, जिसे देवोंने ग्रहण किया था। यदि असुर ग्रहण कर लेते तो बुरी वृत्तियाँ अमर हो जातीं, इसीलिये भगवान् विष्णुने मायासे मोहिनीरूप बनाया और बुरी वृत्तिवाले दैत्योंको अमृत नहीं पीने दिया। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य चाहे तो सारी बुराइयाँ छोड़ सकता है, लेकिन सारी अच्छाइयाँ नहीं छोड़ सकता; क्योंकि अच्छाइयाँ अमर हैं।

चाहे जैसी परिस्थिति हो, मनुष्य चाहे तो सदा सत्य बोल सकता है, लेकिन चाहकर भी सदैव झूठ नहीं बोल सकता। यदि उसे भूख, प्यास आदि महसूस हो तो वह किस प्रकार झूठ बोलकर अपनी आवश्यकता पूरी करेगा? उसे सत्य बोलना ही पड़ेगा, सत्य हर स्थानपर बोला जा सकता है।

अतः अपने शरीररूपी पिण्डमें ही क्षीर-मन्थन करके सत्यकी खोज करो, परमात्माका अनुभव अवश्य प्राप्त होगा, वह तो रहते ही क्षीरसागरमें हैं, सिर्फ हमें अपने विश्वासको दृढ़ करना है।

भगवान् एक अटल सत्य है, एक नाद है जो कि महसूस किया जा सकता है। आत्मामें कोई गुण या विकार नहीं है; लेकिन उसे ॐकाररूपी नादके द्वारा महसूस किया जा सकता है। ॐकाररूपी नादको हम न छू सकते हैं, न बन्द कर सकते हैं, इसे न वायु सुखा सकती है, न जल गीला कर सकता है, न अग्नि जला सकती है। यह ॐकाररूपी नाद निरन्तर ध्वनित हो रहा है, पूरे ब्रह्माण्डमें गूँज रहा है, यही ईश्वर है, यही वह सत्ता है, जिससे सारा विश्व व्याप्त हो रहा है।

ईश्वर ही इस प्रकृतिके रूपमें व्यक्त हैं और वे ही सर्वत्र व्याप्त हैं, अतः प्रकृतिमें जो भी दर्शन हो रहा है, जो भी विशेषता दिखायी दे रही है—सभी कुछ भगवान्का दर्शन है। अपना ध्यान भगवान्में स्थिर रखते हुए संसारका कार्य करते रहना चाहिये, स्वार्थका त्यागकर, परोपकारमें मनको लगाना चाहिये। हर पल भगवान्का धन्यवाद करते हुए जो भी प्राप्त हो, उसे सन्तोषके साथ ग्रहण करना चाहिये। जो मनके विपरीत हो, उसे प्रारब्ध मानकर सहन करना भी तप है और तप कभी बेकार नहीं जाता, आपको कुछ-न-कुछ फल देता ही है।

धृति, क्षमा, दया, सन्तोष, सत्य, अक्रोध, अस्तेय (चोरी न करना), प्रसन्नता, परोपकारिता, उदारता, मधुर भाषण करना, स्वाध्याय करना आदि गुण अपने भीतर धारण करना चाहिये। कामना, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर और अहंकार—ये विषैले बीज हैं। इन्हें अपने



विभिन्न पदार्थोंके साथ-साथ गोमूत्र और पंचगव्यसे बनायी गयी वस्तुओंको सफलताके साथ बेच सकते हैं। आज कई गोशालाएँ बूढ़ी गौओंको पालकर भी आत्मनिर्भर हैं; क्योंकि वे सफलतापूर्वक देशी गायके गोमूत्र और गोबरसे कई वस्तुओंका निर्माणकर और उनको बेचकर गायोंका अच्छी तरहसे पालन-पोषण कर रही हैं। यह याद रहे कि देशी गायका दूध और उससे बने पदार्थ अमृत इसलिये कहलाते हैं; क्योंकि पौष्टिक होनेके साथ-साथ उनमें शरीरके रोगोंका निदान करनेकी अद्भुत क्षमता है।

इस महान् कार्यको करनेकी क्षमता और कार्यकुशलता उन सब उद्योगपतियोंमें है, जो दूसरे उद्योगोंमें सफल हुए हैं। यह ज्ञान-विज्ञानकी कसौटीपर रखकर आँका गया है कि गायका दूध, गोमूत्र, गोबर और अन्य गव्य पदार्थ विशेषकर घी हर प्रकारसे लाभकारी है। राजस्थानकी एक गोशाला जहाँ लगभग एक लाख गायोंकी सेवा होती है, उन्होंने देशी नस्लकी गायके घीके तीन कुछ समय पूर्व वृन्दावन भेजे थे किंतु इतनी अधिक मात्रामें घीको बिकनेमें केवल एक सप्ताह लगा। इससे सिद्ध होता है कि लोगोंको देशी नस्लकी गायके पदार्थोंकी पोषणशक्तिमें अटूट विश्वास है।

उन उद्योगपतियोंको जो इस क्षेत्रमें आनेके लिये राजी हो जायँ, इस बातका ज्ञान होना चाहिये कि देशी नस्लकी गायका दूध भैंस या जरसी गायोंसे कहीं अधिक लाभकारी है, इसलिये किसानोंको इस शुद्ध दूधका वे अधिक पैसा दें। जहाँतक बाजारमें बेचनेके मूल्यकी बात है तो लोग ऐसे शुद्ध देशी गायके दूधके लिये अधिक पैसे देनेके लिये तत्पर हैं।

गोमूत्र और गोबरका प्रयोग कई प्रकारसे हो रहा है, जिससे यह सिद्ध हो गया कि गोमूत्रके अर्कके सेवनसे शरीरके कई रोगोंका निदान होता है। बहुत-सी कीटनाशक दवाइयाँ जो किसानके लिये लाभकारी हैं, वे कई गोशालाएँ गोमूत्रसे बना रही हैं। कई प्रकारकी औषधियाँ, गोमूत्र अर्क, धूपबत्ती, नहानेका साबुन, फिनाइल, टाइल, कागज, डिस्टैम्पर, खपरैल, कीटनाशक, केंचुआ खाद आदि बनाये जा रहे हैं। उद्योगपति किसानोंसे गोमूत्र और गोबर सस्ते दामोंमें लेकर उनकी विभिन्न प्रकारकी वस्तुएँ बनाकर अपने लाभको बढ़ा

सकते हैं। इससे किसानोंको भी लाभ होगा।

हालमें ही एक लेख छपा है, जिसमें बताया गया है कि विशाखापट्टनम्में रहनेवाली एक महिलाने देशी गायके गोबरसे कागजका सफलतापूर्वक निर्माण किया है। डॉक्टर अनुराधाका विश्वास है कि इस प्रकार गोबरसे बननेवाले कागजका उद्योग बड़े पैमानेपर लगाया जाय तो किसानको गोबरका मूल्य इतना मिलेगा कि गोबर बेचनेसे ही गाय और परिवारके पालनका खर्चा निकल आयेगा। गाय अर्थव्यवस्थाका अभिन्न अंग बनेगी तो गोसंवर्धन होगा, किसान और देश सम्पन्न होगा।

कैमिकलसे निर्मित खादने हमारी भूमिकी उर्वरा शक्तिको बहुत हानि पहुँचायी है। हमारे वैज्ञानिक और हमारे किसान इस बातको भली प्रकार जान गये हैं कि खराब हुई भूमिको दोबारा उपजाऊ बनानेके लिये हमें कैमिकलकी बनी खादोंका बहिष्कार करना होगा। परंतु यह तभी सम्भव है जब उनको गायके गोबरसे बनी जैविक खाद ठीक दामोंमें मिलने लगे। उद्योगपति यदि इस डेरीके कामको हाथमें लें, तो वे वैज्ञानिक ढंगसे जैविक खादका निर्माणकर किसानोंको सस्ते दामोंमें उपलब्ध करा सकते हैं, इससे किसान खुशहाल होगा, अधिक गायें पालेगा और देशमें हर प्रकारकी समृद्धि आयेगी।

आज इस कार्यको हमारे पूज्य संत करवा सकते हैं। वे केवल उद्योगपतियोंसे यह कह दें कि ऐसे उद्योग लगायें और उनको सफल बनायें। संतोंने युगों-युगोंसे इस देशको हर कठिन परिस्थितिसे उबारा है। आज गायपर विपत्ति इस देशपर सबसे बड़ा संकट है, इस समस्याका समाधान भी संत ही कर सकते हैं।

एक विचार उद्योगपतियोंको अवश्य देना चाहिये कि इस देशने आज वैज्ञानिक उपलब्धियोंमें उन्नतिकर अपनी धाक सारे विश्वमें जमायी है और विदेशी मुद्रा कमायी है, ऐसे ही देशी गायोंकी डेरियाँ, गोमूत्रसे लाभकारी औषधियाँ और पंचगव्यसे अनेकानेक वस्तुओंका निर्माणकर उससे भी अधिक समृद्धि और सुख-शान्ति पायी जा सकती है और इस कार्यकी सम्पन्नतामें ही समाज और देशकी महान् उन्नतिका रहस्य भी छिपा है।



रोगमें भी भगवत्कृपाका अनुभव करें

(श्रीघनश्यामदासजी मोदानी, बी०ए०, एल-एल० बी०)

हृदयरोग-सम्बन्धी चिकित्सा-पद्धतिमें विज्ञानने चमत्कारिक विकास किया है। आजकल इसके उपचारमें कमसे कम समय, अच्छेसे अच्छे उपचारके साधन, आर्थिक दृष्टिसे कमसे कम अर्थव्यय और रोगीको शारीरिक दृष्टिसे कमसे कम खतरा (Risk) रह गया है। वैसे इस पंचतत्त्व-द्वारा निर्मित शरीरसे एक दिन चेतन तत्त्व (आत्मा)-का चला जाना निश्चित है। केवल कब, कहाँ, कैसे और किस क्रियासे जायेगा, यह अज्ञात है। तथापि धर्मसाधन होनेसे इस शरीरको निरोगी रखना भी आवश्यक ही है। ईश्वरकी अनुपम कृपाके फलस्वरूप मेरे जीवनमें ऐसी परिस्थितियोंका सृजन हुआ कि मेरा हृदयरोग प्रथम चरणमें पकड़में आ गया अर्थात् हार्ट अटैक होनेके पूर्व पकड़में आनेसे हृदयकी नसोंमें काफी क्षति होनेसे बच गयी, जिसके कारण ८ मार्च, सन् २००८ ई०को कोलकाता में बाईपास सर्जरी करवानी पड़ी।

इस प्रक्रियाके दौरान अर्थात् हृदयरोग (ब्लोकेड या नली जाम) साबित हो जानेके बादकी स्थितिसे और उसका उपचार होनेके एक सप्ताह बादतककी स्थितिका मैंने स्वयं जो अनुभव किया, उसे इस लेखके माध्यमसे व्यक्त कर रहा हूँ। ताकि भविष्यमें मेरे ही किसी भाईके शरीरको इस प्रकारकी आवश्यकता पड़नेपर वह इस अनुभवका लाभ उठा सके।

हृदय क्या है

पंचतत्त्वद्वारा निर्मित इस शरीरकी संरचनामें हृदय सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग है और अत्यन्त मजबूत है। पंचतत्त्वद्वारा निर्मित शरीर जड़ है और इसके सारे सांसारिक सहारे भी जड़ ही हैं, जबकि शरीरकी सारी क्रियाओंका संचालन आत्माके द्वारा होता है। हृदय उस आत्माके रहनेका स्थान है और यह आत्मा ईश्वरका अंश है। यह चेतन तत्त्व शरीरको चेतना तो प्रदान करता ही है साथ ही शरीरकी प्रत्येक क्रियाका संचालन करनेमें सहयोग प्रदान करता है। हृदय आत्माका निवास-स्थान है। इसी हृदयमें आत्माके साथ-साथ परमात्माका भी निवास रहता है; क्योंकि आत्मा परमात्माका अंश है और परमात्मा सर्वव्यापक है अर्थात् सब जगह समानरूपसे मौजूद रहता है—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥

जीव और परमात्माका साथ रहना अनादि है। परमात्मा जीवके हृदयमें बैठकर इसकी प्रत्येक क्रियाको नोट करता है तथा उसके अनुसार उसे फल देता रहता है। जीव मायाके वशीभूत होकर इस प्रकारकी क्रियाएँ कर देता है, जिससे उसे सुख-दुःखका भोक्ता बनना पड़ता है। अगर ईश्वर या किसी सन्तकी कृपासे इस सत्यका ज्ञान हो जाय तो जीव परमानन्द-प्राप्तिका अधिकारी बन सकता है। जीवके द्वारा यह बात मान लेनेमात्रसे ईश्वरकी कृपा पूर्णरूपसे उसको यह ज्ञान करवानेमें सहायता प्रदान करती है और जीव वर्धमान प्रेम प्राप्त करनेका अधिकारी हो जाता है।

हृदयरोगके कारण

१. इस आर्थिक युगमें प्रतिस्पर्धिके फलस्वरूप और शहरी जीवनमें वातावरण-प्रदूषणके दुष्परिणामके फलस्वरूप व्यक्तिको उच्च रक्तचाप रहना प्रायः सामान्य-सी घटना हो गयी है।

२. मधुमेह जिसे साधारण बोलचालकी भाषामें चीनीकी बीमारी कहते हैं, इससे भी शहरी वातावरणमें काफी लोग पीड़ित रहते हैं।

३. आजकल फास्ट फूडके प्रचलन और खान-पानकी रुचिमें पश्चिमी सभ्यताके अनुरूप परिवर्तनके फलस्वरूप शरीरमें कोलोस्ट्रॉलकी मात्रा भी असन्तुलित मिलती है।

४. आजकल व्यक्तिमें मानसिक तनाव रहना भी प्रायः सामान्य बात हो गयी है।

ईश्वरकी कृपासे ये सभी विकार एक साथ न हों तो हृदयरोगके उपचारमें सहायक रहते हैं।

हृदयरोगके लक्षण

१. पैदल चलते समय श्वासका फूलना।
२. हृदयमें भारीपनका अनुभव होना।
३. कभी सीनेमें दर्दका अनुभव होना।
४. पैदल चलते समय पसीना आना।
उपर्युक्त सभी हृदयरोगके प्रारम्भिक लक्षण माने जाते हैं।

हृदयरोगसे बचनेके उपाय

व्यक्तिकी आयु ५० वर्षसे अधिक होनेके बाद अगर



निम्न बातोंका ध्यान रखा जाय तो हृदयरोग न होनेकी सम्भावनाएँ बनी रहती हैं—

१. प्रातः सूर्यकी किरणें निकलनेके पूर्व तीन या चार मील तेज रफ्तारसे चलना।

२. नशीली वस्तुओं जैसे शराब, भाँग, गाँजा, गुटका, जर्दा आदिका सेवन न करना। ठण्डे पेय पदार्थ, जिनमें नशीले तरल पदार्थोंका मिश्रण है आदिका सेवन न करना।

३. घी, तेल और चिकनाईयुक्त कोई भी तरल पदार्थ, तली या छौंकी वस्तुओंका सेवन न करना। नमकीन वस्तुएँ जैसे पापड़, चिप्स, चूरन आदिका ज्यादा सेवन न करना।

४. जिन फलोंमें सुगर ज्यादा मात्रामें हो, जैसे—केला, खजूर, सीताफल, गन्ना, अंगूर, आम आदिका सेवन न करना। जो सब्जियाँ जमीनके नीचे होती हैं, जैसे—आलू, ओल, अरबी, मूँगफली तथा कच्चे केले आदिका सेवन न करना। मैदा या इससे निर्मित पदार्थोंका सेवन न करना।

५. शरीरका वजन कम रखना, रक्तचापपर नियंत्रण रखना एवं खानेकी अन्य चीजोंका सेवन उचित अनुपातसे कम करना। वर्षमें दो बार ई. सी. जी. एवं खूनका परीक्षण (लिपिड प्रोफाइल) करवाकर अनुभवी डाक्टरसे परामर्श कर लेना उचित है।

६. नियमित समयपर कम खाना, खानेके समयमें ज्यादा अन्तर न होना, रात्रिको जल्दी सोना, प्रातः जल्दी उठना, काम करनेमें जल्दबाजी न करना, कठोर परिश्रमका कार्य न करना, चिन्ता एवं मानसिक तनाव उत्पन्न करनेवाले विषयोंसे दूर रहना, अपने स्वार्थ (हित) में पागल न होना बल्कि जहाँतक बन सके, जिसमें अपना तथा दूसरेका हित होता हो, उस कार्यको करना।

७. आस्तिक व्यक्तियोंको अपनी इन्द्रियोंको भोगमें न लगाकर योगमें लगानेसे अत्यधिक हित होगा। मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार आदिको शुभ कर्मोंमें लगाकर भगवत्कृपाकी अनुभूति मानना हितकारी है।

हृदयरोगके जाननेकी प्रक्रिया

प्रारम्भिक अवस्थामें चिकित्सक रोगीके हृदयकी जाँच ई. सी. जी. (E. C. G.)-के द्वारा करवाते हैं। ई. सी. जी. (E. C. G.)-में दोष आनेपर रोगीका इकोकार्डिओग्राम (Echocardiogram) करवाया जाता है

किंतु चिकित्सक हृदयरोगकी मात्राका अनुमान अपने अनुभवके आधारपर करके दवाइयाँ, खानेमें परहेज, आराम करनेकी सलाह आदि देता है। इकोकार्डिओग्राम-परीक्षण हृदयकी वर्तमान स्थितिको रोगके अनुरूप ज्यादा स्पष्ट करता है अर्थात् इस परीक्षणसे हृदयकी भीतरी बनावट एवं उसकी क्रियाका पता चलता है। इकोकार्डिओग्राम-परीक्षणमें दोष आनेपर एक और परीक्षण कराया जाता है, जिसे टी. एम. टी. (T. M. T.)-के नामसे जाना जाता है। इस परीक्षणद्वारा मशीनपर चलने एवं दौड़नेकी स्थितिमें हृदयकी स्थिति क्या रहती है, यह स्पष्ट होता है। साथ ही साथ रोगीके खूनमें विभिन्न चीजोंकी वर्तमान स्थिति क्या है? यह जाँच भी करायी जाती है। टी. एम. टी. (T. M. T.)-की रिपोर्टमें पाजिटीव आनेपर करीब-करीब यह निश्चय हो जाता है कि हृदयकी नलीमें अवरोध (ब्लोकेड) है। यह अवरोध (ब्लोकेड) कितना है एवं हृदयके किस भागमें है, इसके लिये कॉरोनरी एनज्योग्राफी (Coronary Angiography)-का परीक्षण करवाया जाता है। इस परीक्षणमें मशीनके माध्यमसे हृदयकी नलीका चित्र लिया जाता है। एनज्योग्राफी (Angiography)-परीक्षणकी रिपोर्टके आधारपर कोई एक उपचार रोगीकी स्वीकृति मिलनेपर प्रारम्भ किया जाता है।

हृदयरोग-उपचारके तरीके

१. खूनकी नलीमें अवरोध (ब्लोकेड) का कम मात्रामें होना तथा ऐसे भागमें होना जिसकी वजहसे हार्ट अटैकका खतरा काफी कम रहता है या रोगीकी आर्थिक स्थिति ऐसी है जिससे वह एनज्योप्लास्ट या बाईपास सर्जरी करवानेमें असमर्थ है। उस स्थितिमें उपचारमें दवाइयोंका सहारा लिया जाता है। सवरे घूमना, खाने-पीनेमें पूर्ण सावधानी रखना और कुछ समय पूर्ण आराम करना बतलाया जाता है। कभी-कभी इस उपचारसे हृदयके अवरोध (ब्लोकेड) में कमी भी हो सकती है या अवरोध (ब्लोकेड) का बढ़ना रुक सकता है।

२. एनज्योप्लास्ट (Angioplast)-यह एक ऐसा उपचार है, जिसमें हृदयकी जिस नसमें खूनके आवागमनमें अवरोध हो गया है, उस नसमें बेलून पास करके उस अवरोधको दूर कर दिया जाता है और उस नसमें एक स्टैन्ड लगा दिया जाता है, जो उस नसको सहारा प्रदान

राम ते अधिक राम कर दासा

(श्री एन०एल० बंसलजी)

महान् सन्त एवं युगकवि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी—
द्वारा रचित निम्न दो चौपाइयाँ भगवान् एवं भक्तके परस्पर
अटूट सम्बन्धको प्रदर्शित करती हैं—

मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी ॥

(रा०च०मा० १।११२।४)

मंगल-मूर्ति मारुति-नंदन । सकल-अमंगल-मूल-निकंदन ॥

(विनय-पत्रिका, पद ३६)

पहली चौपाई महाराजा दशरथके आँगनमें विहार
करनेवाले बालरूप भगवान् रामके सन्दर्भमें है और दूसरी
चौपाई मारुतिनन्दन (पवनपुत्र) श्रीहनुमान्जीके सन्दर्भमें
है, जो श्रीरामजीके अनन्य भक्त हैं। अनन्य यानी जिसे
भगवान्के अलावा अन्य किसीकी गति नहीं।

भगवान् एवं भक्तमें कितनी साम्यता है कि एक
मंगलभवन हैं (भगवान् राम), तो उनके भक्त हनुमान्जी
मंगलमूर्ति हैं। इसी प्रकार भगवान् अमंगलको हरनेवाले हैं
तो हनुमान्जी अमंगलको जड़मूलसे उखाड़नेमें समर्थ हैं।
यहाँ ध्यान देनेयोग्य मुख्य बात भगवान्की परम उदारता
एवं भक्तवत्सलता है कि उन्होंने अपने भक्तको न केवल
अपनी बराबरीका दर्जा दिया बल्कि अपनेसे अधिक
सामर्थ्यवान् बना दिया, जैसा कि हनुमान्जी अमंगलको
जड़मूलसे नष्ट करनेकी शक्ति रखते हैं, यद्यपि यह शक्ति
भी उन्हें अपने इष्ट रामसे ही सुलभ हुई है।

अब आगे ध्यान दीजिये—भगवान् मंगलभवन (मन्दिर)
हैं एवं उनके भक्त हनुमान्जी मंगलमूर्ति। मन्दिर एवं
मूर्ति—दोनों एक-दूसरेसे जुड़े हैं। जहाँ एक ओर मन्दिरकी
शोभा मूर्तिसे है, वहीं दूसरी ओर मूर्तिकी शोभा मन्दिरसे
है। मन्दिरके बिना मूर्ति अधूरी है तो मूर्तिके बिना मन्दिर
अधूरा है। भाव यह है कि भगवान्के बिना भक्त एवं
भक्तके बिना भगवान् अधूरे हैं। वे एक-दूसरेके बिना नहीं
रह सकते।

यह भगवान्की परम उदारता एवं भक्तके प्रति
उनका असीम प्रेम है कि उन्होंने हनुमान्जीको अपनेसे
अधिक पूजनीय बना दिया। 'राम ते अधिक राम कर

दासा' को भगवान् रामने ही चरितार्थ किया है। इसका
प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आज भी संसारमें भगवान् रामके
मन्दिरोंकी अपेक्षा भक्त हनुमान्जीके मन्दिर अधिक मिलेंगे
अर्थात् अपने भक्तकी सेवासे भगवान् अधिक प्रसन्न होते
हैं। यही कारण है कि भगवान् राम जानकी एवं
लक्ष्मणजीके सहित भक्त हनुमान्के हृदयमें सदा विराजते
हैं और जहाँ भगवान् श्रीराम निवास करते हैं, वह स्थान
स्वाभाविकरूपसे ही मंगलमय हो जाता है। जब भगवान्ने
प्रवर्षण पर्वतपर वास किया था तो उस समय उसके
आस-पासका समस्त वन्य-प्रान्त मंगलमय हो गया था—
मंगलरूप भयउ बन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते ॥

इसी प्रकार चित्रकूट-निवासके विषयमें भी
गोस्वामीजीने लिखा है—

सो बनू सैलु सुभायँ सुहावन । मंगलमय अति पावन पावन ॥
महिमा कहिअ कवनि बिधि तासू । सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू ॥

जब वन-पर्वत आदि स्थावर भगवान्के निवाससे
मंगलमय हो जाते हैं, तो परमभक्त हनुमान्जीके मंगलमूर्ति
होनेमें भला क्या आश्चर्य है ?

भगवान् एवं भक्त दोनों एक-दूसरेका स्मरण करते
रहते हैं। एक बार भक्त भगवान्को क्षणभरके लिये भूल
सकता है; परंतु भगवान् अपने अनन्य भक्तको सदा याद
रखते हैं। सच्चे भक्तके पास भगवान् स्वयं चलकर जाते हैं,
जैसे केवट एवं शबरीके पास राम स्वयं चलकर गये थे।
यही मंगलभवन एवं मंगलमूर्तिकी सही अर्थोंमें भाव है।

अन्तमें यही निवेदन है कि जहाँ राम हैं, वहीं विश्राम
(शान्ति) है। यह कलियुग अशान्ति—दुःखसे भरा है।
मनुष्य यदि सुख, शान्ति चाहता है, तो स्वयंको रामसे जोड़
ले, उसका जीवन सार्थक हो जायगा। गोस्वामीजीके
शब्दोंमें—

सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो ।

सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को ॥

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ ।

पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ ॥

परोपकार

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

[श्रीरामेश्वरजी टांटिया (१९१०—१९७७ ई०) राजस्थानके एक सम्भ्रान्त परिवारके थे तथा ये पन्द्रह वर्षकी आयुमें राजस्थान छोड़कर कलकत्ता आ गये थे। संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हुए इन्होंने पुरुषार्थके बलपर स्वयं अपने जीवनका निर्माण किया। ये कई वर्षोंतक सांसद रहे। इन्होंने अपनी लेखनीद्वारा राजस्थानकी कई सत्य घटनाएँ प्रस्तुत की हैं, जो वहाँके सामान्य जनजीवनको प्रदर्शित करती हैं। प्रस्तुत वृत्तान्त उसी संग्रहका एक अंश है— सम्पादक]

आजसे पचास-साठ वर्ष पहले राजस्थानमें बड़े शहरोंके सिवा अन्यत्र कहीं भी डॉक्टर नहीं थे। अगर कोई धनी व्यक्ति ज्यादा बीमार हो जाता तो इलाजके लिये जोधपुर या बीकानेरसे डॉक्टरको बुलाया जाता। हमारे कस्बेमें एक बार एक सेठके इलाजके लिये कलकत्तासे आशुबाबू नामके एक बड़े बंगाली डॉक्टर आये थे। इन्हें देखनेके लिये स्थानीय लोगोंके अलावा बहुत-से ग्रामीण भी आये थे; क्योंकि एक सौ रुपया प्रतिदिनकी फीस उस समय एक अद्भुत और अनोखी बात थी।

बीमारियाँ तो उस समय भी होती थीं, परंतु डॉक्टरी इलाजका प्रचलन नहींके बराबर था। सर्दी, जुकाम, सिर-दर्द और यहाँतक कि मलेरिया और मियादी बुखारमें कालीमिर्च और लौंगकी चाशनी या दशमूलका काढ़ा दे दिया जाता था। अधिकांश रोग इन्हीं देशी जड़ी-बूटियोंसे ही दूर हो जाते।

वैद्योंके अलावा हर मोहल्लेमें एक-दो सयानी स्त्रियाँ रहतीं, जिनकी कोथली (थैली)-में जच्चा और बच्चा दोनोंके लिये दवाएँ रहतीं। बीमारके घरवालोंको इन्हें बुलानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। खबर पाकर वे स्वयं ही पहुँच जातीं और रोगीकी सेवामें लग जातीं। किसी प्रकारकी फीस या औषधिके मूल्यका तो प्रश्न ही नहीं था बल्कि ऐसे मौकोंपर पुराने वैर-बदले भी समाप्त हो जाते।

थोड़े वर्षों बाद, शायद सन् १९३० ई० के लगभग, एकाध डॉक्टर भी आ गये थे, जिनके गलेमें या कोटके ऊपरकी जेबमें रबरका स्टेथिस्कोप पड़ा रहता। फीस अधिकतम दो रुपये होती, किंतु उस समय लोगोंको यह भी अखरती थी, इसलिये अधिकांश रोगी झाड़-फूँक या स्थानीय वैद्यजीका ही सहारा लेते।

वैद्यका बेटा अपने-आप वैद्य हो जाता। आयुर्वेदकी डिग्रियाँ तो थी नहीं। परंतु बड़ोंद्वारा प्राप्त नाड़ी और औषधिका ज्ञान उन्हें यथेष्ट रहता। आजकलकी तरह थूक, खून और मूत्रकी परीक्षाके साधन न होनेपर भी नाड़ी-ज्ञानद्वारा ये लोग रोगका सही निदान कर देते। कुछ एक पुश्तैनी वैद्योंके पास विश्वसनीय और कीमती आयुर्वेदिक दवाएँ अच्छी मात्रामें पायी जातीं, जिनका असर अचूक होता।

शायद सन् १९३६ ई०की बात है। हमारे कस्बे और आस-पासके गाँवोंमें बड़े जोरका हैजा फैला। प्रतिदिन बीस-तीस आदमी मरने लगे। लोगोंमें घबराहट फैल गयी। जिनके पास साधन थे, वे दूरके गाँवोंमें अपने सगे-सम्बन्धियोंके यहाँ चले गये। यहाँतक कि डॉक्टर और वैद्य भी चले गये; क्योंकि जिनसे फीस मिलनेकी आशा थी, वे तो पहलेसे ही जा चुके थे। बच गये थे गरीब लोग जिनके पास फीस तो क्या, दवाके दाम भी नहीं थे। इतना ही नहीं, रोगका प्रकोप ज्यादा बढ़ा तो घरवाले भी रोगियोंको छोड़कर भागने लगे।

घर-घरमें रोगी पड़े थे और डॉक्टर-वैद्योंमें केवल एक ही रह गये थे, कविराज ब्रजमोहन गोस्वामी। परिवारवालोंने और मित्रोंने उनसे बहुत आग्रह किया कि वे कस्बा छोड़ दें; आखिर अकेले कर ही कितना पायेंगे? साथ ही, जान भी जोखिममें रहेगी। उनका जवाब था कि मेरे पितामह और पिता माने हुए वैद्यराज थे। उन्होंने कभी संकटके समय रोगीको नहीं छोड़ा। यहाँतक कि गरीबोंके लिये दवाके सिवा कभी-कभी पथ्यकी भी व्यवस्था अपने पाससे की। इस समय अगर मैं भागकर चला जाऊँगा, तो इन असहायोंका क्या होगा? मृत्यु तो अवश्यम्भावी है, एक दिन होगी ही, फिर कर्तव्यविमुख होकर अपकीर्तिकी मृत्यु क्यों हो?

हैजेका सबसे ज्यादा प्रकोप था, नीची समझी जानेवाली जातियोंके मुहल्लोंमें। वीरान गाँव, भयावह गलियाँ, सूने घर और मुर्दोंकी सड़ाँधसे पूरा गाँव श्मशान-सा नजर आता था। गोस्वामीजी सुबह छः बजे उठते और दोपहर बारह बजेतक बीमारोंको देखते रहते। फिर खाना खाकर बिना सुस्ताये रातके दस बजेतक वही कार्यक्रम चालू रहता। उस समयतक हैजेके इंजेक्शन और एलोपैथिक दवाएँ ईजाद हो चुकी थीं, पर वहाँ न तो इंजेक्शन देनेवाले डॉक्टर या कम्पाउण्डर थे और न दवाफरोश ही। वैद्यजीका तीन-चार हिम्मतवाले युवकोंने साथ दिया। मनों प्याजका रस निकालकर मटके भर लिये और ऊँटोंका मूत्र भी बड़ी मात्रामें इकट्ठा कर लिया। भगवान्का नाम लेकर वे दोनों औषधि रोगियोंको पिलाने लगे और इनसे ही चमत्कारिक लाभ होने लगा।

उस समय राजस्थानमें छुआछूत बहुत थी। गोस्वामीजी

स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।

या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः

संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥

(श्रीमद्भा० १०।३२।२२)

मेरी प्यारी गोपियो! तुमने मेरे लिये घर-गृहस्थीकी उन बेड़ियोंको तोड़ डाला है, जिन्हें बड़े-बड़े योगी-यति भी नहीं तोड़ पाते। मुझसे तुम्हारा यह मिलन—यह आत्मिक संयोग सर्वथा निर्मल और निर्दोष है। यदि मैं अनन्त कालतक तुम्हारे प्रेम, सेवा और त्यागका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं जन्म-जन्मके लिये तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम अपने सौम्य स्वभावसे, प्रेमसे मुझे उन्नत कर सकती हो, परंतु मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ।

भक्त कवि श्रीसूरदासजीने महाभाग गोपांगनाओंके महा-भावमय प्रेमका अद्भुत चित्रण किया है और बताया है कि ब्रजांगनाओं (गोपियों)—का कृष्णप्रेम अनुपमेय है। उसकी किसी भी युगमें कहीं तुलना नहीं है। एक सखी दूसरी सखीसे कह रही है कि हे सखी! नेत्रोंने मेरा कहना नहीं माना, रोकनेपर भी वे श्यामसुन्दरकी तरफ देखने लगे, जिसके परिणामस्वरूप वे उनपर मोहित हो गये, जिससे आज यह हमारी दशा हुई है। यथा—

नैना कह्यौ न मानै मेरौ।

मो बरजत बरजत उठि धाए, बहुरि कियौ नहिं फेरौ ॥
निकसे जल प्रवाह की नाई, पाछें फिरि न निहार्यौ।

भव जंजाल तोरि तरु बन के, पल्लव हृदैं बिदार्यौ ॥
तबहीं तैं यह दसा हमारी, जब येऊ गए त्यागि।

सूरदास प्रभु सौं वे लुबधे, ऐसे बड़े सभागि ॥

(अनुराग-पदावली)

गोपी कह रही है—(सखी!) मेरे नेत्र मेरा कहना नहीं मानते, मेरे बार-बार मना करनेपर भी वे उठकर (श्यामसुन्दरकी ओर) दौड़ पड़े और फिर लौटकर आये ही नहीं। वे जलके प्रवाहकी भाँति निकले तथा उन्होंने पीछे घूमकर देखा भी नहीं। उन्होंने हमारे संसारके जंजाल (सम्बन्ध)—रूपी वनके वृक्षोंको तोड़कर पल्लवके समान कोमल हृदयको विदीर्ण कर दिया। इस प्रकार जबसे ये नेत्र भी छोड़ गये, तभीसे हमारी यह दशा हो गयी है। वैसे तो ये नेत्र महान् भाग्यशाली हैं कि प्रभुपर मोहित हो गये हैं।

गोपी कहती है कि हे सखी! जब मेरी आँखोंने मेरा कहना नहीं माना, तो फिर आगे भगवान् श्रीहरिकी शोभाको

ये भाग्यवान् नेत्रोंसे निहारने लगते हैं और जब निहारते हैं तो ललचा जाते हैं और एकटक देखने लगते हैं। यथा—
हरि छबि देखि नैन ललचाने।

इकटक रहैं चकोर चंद ज्यों, निमिष बिसरि ठहराने ॥

मेरौ कह्यौ सुनत नहिं स्रवननि, लोक लाज न लजाने ॥

गए अकुलाइ धाइ मो देखत, नेकौ नाहिं सकाने ॥

जैसैं सुभट जात रन सनमुख, लरत न कबहुँ पराने।

सूरदास ऐसी इन्हि कीन्ही, स्याम रंग लपटाने ॥

(अनुराग-पदावली १८६)

गोपी कह रही है—सखी! मेरे नेत्र श्यामसुन्दरकी शोभा देखकर लुब्ध हो गये हैं। जैसे चकोर चन्द्रमाको एकटक होकर देखता है, उसी प्रकार ये नेत्र पलकें गिराना भूलकर स्थिर हो गये हैं। मेरा कहना ये कानोंसे सुनते नहीं और समाजकी लज्जासे भी लज्जित नहीं होते। मेरे देखते-देखते ये आतुर होकर दौड़ गये, इन्होंने तनिक भी संकोच नहीं किया—जैसे अच्छा योद्धा युद्ध करते हुए कभी भागता नहीं है। ऐसा ही कार्य इन्होंने भी किया, ये श्यामसुन्दरके प्रेममें ही लिप्त हो गये हैं।

गोपी कहती है कि पहले नेत्रोंने हमारा कहा नहीं माना तो इसका फल यह हुआ कि उन्होंने हरिदर्शन किये और हरिदर्शनसे नेत्र ललचा गये; क्योंकि जो चीज अच्छी लगी, उसको देखकर ललचा जाना स्वाभाविक है और ललचानेके फलस्वरूप ये नेत्र भगवान्के दास हो गये और दास हो जानेके बाद क्या हुआ, यह आगेके पद पढ़नेसे स्वतः ज्ञात हो जायगा। यथा—

लोचन भए स्याम के चरे।

एते पै सुख पावत कोटिक, मो न फेरि तन हेरे ॥

हा हा करत, परत हरि चरननि, ऐसे बस भए उनही।

उन कौ बदन बिलोकत निसि दिन, मेरौ कह्यौ न सुनहीं ॥

ललित त्रिभंगी छबि पै अँटके, फटके मोसौं तोरि।

सूर दसा यह मेरी कीन्ही, आपुन हरि सौं जोरि ॥

(अनुराग-पदावली १८५)

गोपी कहती है कि मेरे नेत्र प्रभुके दास हो जानेपर करोड़ों गुना आनंद पाते हैं। आनन्द पानेके फलस्वरूप अगली कड़ीमें इन्होंने मेरा ही साथ छोड़ दिया अर्थात् मेरे नेत्र मेरे नहीं रहे, श्यामके गुलाम हो गये और वह गोपी घबराकर यह बात अब अपनी माँसे किस ढंगसे कहती है, देखिये, अगले पदमें—

साधनोपयोगी पत्र

(१)

आत्मशक्तिमें विश्वासका फल

प्रिय भाई! सप्रेम राम राम। आपके पत्र प्राप्त हुए। उन्हें मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा। आप बहुत घबरा रहे हैं और निराश तथा हतोत्साह होकर मानो चारों ओर अन्धकार देख रहे हैं। असफलता, विपत्ति और आधि-व्याधिमें ऐसा होना स्वाभाविक है। परंतु ऐसी बात वास्तवमें है नहीं। मनुष्यको कभी हतोत्साह और निराश नहीं होना चाहिये। गिरे हुए उठते हैं, दुर्बल सबल होते हैं, तिरस्कृत सम्मानित होते हैं और चारों ओर अन्धकार देखनेवाले प्रकाश पाते हैं। यह प्रकृतिका नियम है। कृष्णपक्षके बाद शुक्लपक्ष आता ही है, रातके बाद दिन होता ही है। अतएव आप इतना मत घबराइये। निराश होकर सर्वथा अपनेको अकर्मण्य मानकर महान् आत्मशक्तिका तिरस्कार न कीजिये। नित्यसंगी सर्वशक्तिमान् और हमारे-आपके अहैतुक प्रेमी परम सुहृद् भगवान्का अपमान न करें। भगवान्की घोषणा याद रखें—

‘मच्चिन्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि॥’

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

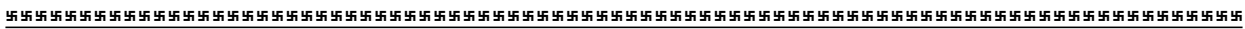
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

मुझमें चिन्त लगा लो, फिर मेरे प्रसादसे—अनुग्रहसे सब कठिनाइयोंसे तर जाओगे। जो अनन्य पुरुष मेरी भलीभाँति उपासना करते हुए मेरा अनन्य चिन्तन करते हैं, उन नित्य मुझमें लगे हुए भक्तोंका ‘योगक्षेम’ मैं (स्वयं) वहन करता हूँ।

अतएव आप घबरायें नहीं। यह कभी मत सोचिये कि हम तो गिरे हुए हैं, गिरे ही रहेंगे। उठेंगे ही नहीं। यह सोचना ही आत्माका और भगवान्का अपमान करना है। आत्मदृष्टिसे कहा जाय तो जो आत्मा भगवान् शंकराचार्य, बुद्धदेव, जनक, भीष्म, युधिष्ठिर, अर्जुन आदिमें थी, वही आपमें है। सुप्त आत्मशक्तिको जाग्रत् करना आपके हाथ है। भगवान्के बलपर निराशा, निरुत्साह, कायरता, दीनता छोड़कर साधनमें लगे रहिये। आत्माकी अनन्त शक्तिपर विश्वास कीजिये। जो मनुष्य आत्मशक्तिपर विश्वास करके काममें जी-जानसे जुट जाता है—सफलताके बारेमें कभी सन्देह नहीं करता, उसके लिये अपने-आप ही

सफलताका मार्ग सुन्दर, प्रकाशमय और कुशकण्टकहीन बनता जाता है और ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता है, त्यों-ही-त्यों उसका अनुभव, उसकी कार्यकारी शक्ति, उसका ज्ञान, उसकी क्षमता, उसका साहस और उल्लास बढ़त चला जाता है। परंतु जो आत्मशक्तिमें या भगवान्के बलमें सर्वथा अविश्वास करके निराश होकर बैठ जाता है, कुछ भी करनेमें अपनेको नितान्त असमर्थ समझता है, उसको ब्रह्मा भी नहीं उठा सकते। वह विषादमय जीवन ही बिताता है। सब कुछ करनेमें समर्थ होकर भी वह सब प्रकारसे वंचित रह जाता है!

‘हारिये न हिम्मत बिसारिये न राम।’ रामकी कृपासे और आत्माकी शक्तिसे क्या नहीं हो सकता? इनके लिये कोषमें ‘असम्भव’ शब्द ही नहीं है। आप जो अपनेको अब किसी कामका नहीं मानते हैं, सब ओरसे आश्रय और सहानुभूतिसे रहित मानते हैं; बस, आपके विषादका यही कारण है। निर्धनतासे विषाद नहीं होता, यह तो आत्मग्लानिसे ही होता है। शोकरहित होनेकी शक्ति आपके साथ भगवान्ने पहलेसे ही दे रखी है, वह नित्य आपके साथ रहती है। आपके अन्दर ही है। उसके रहते आप अपनेको निराश्रय और सहानुभूतिसे रहित क्यों मानते हैं। वही तो सच्चा और पक्का आश्रय है, जो बुरी-से-बुरी हालतमें भी साथ नहीं छोड़ता। भय, विभीषिका, वियोग, विषाद और विनाशमें भी जो साथ ही रहता है। आपके प्रत्येक दुःखमें जो दुःखका अनुभव करता रहता है, उस महामहिम नित्य आश्रयको बिसारकर ही आप दुःखी हो रहे हैं। आप इसी अवस्थामें आज ही सुखी हो सकते हैं, यदि उसे देख पायें—उसका अनुभव कर सकें। आपने मेरे लिये लिखा कि ‘आप सर्वशक्तिमान् हैं, सब जगह आपका निवास है; यह हमारा पक्का विश्वास है। हम अब केवल आपके ही शरण हैं, आपको ही अपनेको अर्पण करते हैं। हमारा रास्ता आप ही कीजिये।’ सो भैया! यह आपका पागलपन है। आत्माकी दृष्टिमें मुझे सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापी मानते हैं तब तो ठीक ऐसे ही आप भी हो। अन्य किसी दृष्टिसे मानते हैं तो वह आपका सर्वथा भ्रम है, इस भ्रमको तुरंत छोड़ दीजिये, इससे कोई लाभ न होगा। उन परमात्माके शरण जाइये, जो वस्तुतः सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वलोक-



महेश्वर होते हुए ही आपके-हमारे और सबके परम सुहृद् हैं। अपना सब कुछ उन्हींके अर्पण कर दें। अपने सुख-दुःख भी उन्हें सौंप दें। सब अर्पण करनेवालेके पास दुःख, निराशा, उदासी, अन्धकार—ये सब कहाँ रह जायँगे? ये रहेंगे तो सब अर्पण कैसे हुआ? अतएव उन्हें इन सबको भी दे दें। कह दें—अच्छा-बुरा सब तुम्हारा। जब हमीं तुम्हारे हो गये तो इस अपनी बुराईको हम कहाँ रखें? वे दयालु प्रभु आपके अच्छे-बुरे सारे उपहारोंको अपनी कृपाकी नजरसे परम पवित्र और परम दिव्य बनाकर ग्रहण कर लेंगे। उनकी दयापर विश्वास करें। समस्त बल, समस्त ऐश्वर्य, समस्त श्री, समस्त धर्म, समस्त ज्ञान और समस्त वैराग्यके वे भण्डार हैं और अपने सारे ऐश्वर्यसे, सारे माधुर्यसे, सारी शक्तिसे आपको अपनाकेको सदा तैयार हैं। उनकी शरण जायँ, वे आपपर अपना दिव्य अमृत-कलश उँडेलकर आपको निहाल कर देंगे! घबराइये नहीं, निराश न होइये, वे आपके हैं, इस बातपर पूर्ण विश्वास रखिये और अपने भविष्यको उज्ज्वल—परम उज्ज्वल देखिये। उनकी कृपासे आपका भविष्य इतना उज्ज्वल हो सकता है, जितनेकी आप कल्पना नहीं कर सकते।

यदि आपको मुझपर कुछ भी विश्वास है तो आप मेरी उपर्युक्त बातोंपर विश्वास करके अनन्त आत्मशक्तिपर और परम सुहृद् भगवान्की अपार कृपापर विश्वास करके शोक, विषाद, निराशा और निरुत्साहको छोड़कर उनके चरणोंका स्मरण करते हुए निश्चयपूर्वक उनके शरणकी ओर बढ़ चलें। अगर आपने ऐसा किया तो मैं भी आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपका भविष्य उज्ज्वल ही नहीं, उज्ज्वलतम हो सकता है और उसकी प्रभाको पाकर बहुत दूर-दूरके लोग प्रकाश पा सकते हैं।

हमेशा भगवान्का चिन्तन करें। चित्तमें प्रसन्न रहें और आनन्दपूर्वक आगे बढ़ते चलें। शुद्ध नीयतसे कर्म करते रहें। भगवान् सब आप ही ठीक करेंगे! शेष प्रभुकृपा।

(२)

सच्चा धन

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला, सब समाचार जाने। भैया! देखो, भगवान् सर्वत्र हैं, सब समय हैं; उनको देखो। उनकी दया सब ओर सर्वदा बरस रही है, जाओ, उसमें नहा लो! शोक, चिन्ता, विषाद, भय, निराशा

और आलस्यको छोड़ दो। भगवान्की सन्निधिमें ये कहीं रह ही नहीं सकते। संसारके भोगोंमें—धन-ऐश्वर्य, स्त्री-पुत्र, मान-बड़ाई आदिके मोहमें ज्यादा मत फँसो। फँसोगे तो रोना पड़ेगा। फँसे हो, इसीलिये रोते हो। इनके हानि-लाभमें शोक-हर्ष न करो। मूर्ख ही सांसारिक भोगोंके आने-जानेमें हँसते-रोते हैं। पद-पदपर भगवान्को और भगवान्की दयाको देखो। शरदपूर्णिमाके चन्द्रमाकी चाँदनीकी तरह भगवान्की दया सर्वत्र छिटक रही है। शरीर कुछ बीमार है, दवा लेते हो सो ठीक ही है। बड़ी बीमारी तो भवरोग है। इस शरीरका रोग कदाचित् एक बार मिट भी गया तो क्या होगा। मौतके मुँहसे कदापि नहीं बच सकोगे। भवरोगका नाश करो, उस लम्बे रोगकी जड़ काट दो। फिर नित्य निरामय हो जाओगे। कोई रोग रह ही नहीं जायगा। यह मत खयाल करो कि हम बड़े पापी हैं; हमें भगवान् कैसे अपनायेंगे? उनका द्वार सबके लिये खुला है। दीनोंके लिये विशेषरूपसे! जो पूर्वकृत पापोंके लिये पछताते हैं और अपनेको पापी-अनधिकारी तथा दीन मानकर भगवान्के चरणोंमें जाते डरते हैं, भगवान् उन्हें आकर ले जाते हैं; परंतु जो पुण्यके घमण्डमें भगवान्के द्वारपर जाकर भी एँटे रहते हैं, उनके लिये खुले द्वार भी बन्द हो जाते हैं। भगवान्को दैन्य प्रिय है, अभिमान नहीं! इसलिये जहाँतक बने, धनका और इज्जतका अभिमान छोड़कर सबका सम्मान करो। आपके अन्दर यह एक दोष है। आप कभी-कभी धनके कारण अपनेको दूसरोंसे कुछ बड़ा मान लेते हो; इससे आपके पारमार्थिक पथमें बाधा आ जाती है। धन भी कोई महत्त्वकी चीज है? यह तो राक्षसोंके पास बहुत ज्यादा था। रावणकी तो सोनेकी लंका थी। सच्चा धन तो श्रीभगवान्का भजन है। उसीको इकट्ठा करो। यही धन आपके काम आयेगा। संसारी ईंट-पत्थरके धनको तो जहाँतक बने, भगवान्की सेवामें लगा दो। उसे अपना मानकर क्यों फँस रहे हो? मेरी बात मानो तो नीचे लिखी सात बातोंपर विशेष ध्यान रखो—

१. किसी प्राणीसे घृणा या द्वेष न करो। २. किसीकी निन्दा न करो। ३. धनके कारण अपनेको कभी ऊँचा मत समझो। ४. भगवान्की दयाका अनुभव करो। ५. दुःखमें उनकी दयाका विशेष अनुभव करो। ६. सुखमें उन्हें भूलो मत और ७. सदा-सर्वदा उनके स्वरूपके चिन्तन और नामके जपका अभ्यास करो। शेष प्रभुकृपा।

(३)

गयाश्राद्धकी महिमा

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला, आपके माता-पिता, चाचा-चाचीका स्वर्गवास हो चुका है, उनका गयाश्राद्ध करनेकी आपकी इच्छा थी, परंतु कुछ समस्याओंके कारण आप नहीं कर सके। अब वर्तमान समयमें आपका स्वास्थ्य खराब रहता है, इसलिये गयाश्राद्धका पूर्ण कृत्य करनेमें आप अपनेको समर्थ नहीं पाते हैं। आपने पत्रमें यह भी पूछा है कि हरिद्वारमें कोई संस्था पिण्डदान कराती है, वहाँ पिण्डदान कर देनेसे क्या वह गयाके समान मुक्तिदायक होगा?

अपने शास्त्रोंमें पिण्डदानके लिये गयाका सर्वोपरि माहात्म्य है, यह महिमा गयास्थानकी है। हरिद्वारमें कुशावर्त-घाटपर पिण्डदानका कार्य सम्पन्न होता है। इस प्रकार प्रायः सभी तीर्थोंमें श्राद्ध तथा पिण्डदान करनेकी विधि है, परंतु गयामें श्राद्ध, पिण्डदान सभीको करना चाहिये। पुत्रके लिये शास्त्रोंमें तीन बातें मुख्यरूपमें बतायी गयी हैं—

जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्।**गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥**

(देवीभागवत ६।४।१५)

अर्थात् १-जीवित अवस्थामें माता-पिताकी आज्ञाका पालन करना, २-उनकी मृत्युके अनन्तर श्रद्धापूर्वक श्राद्धमें अपने सामर्थ्यानुसार खूब भोजन कराना एवं ३-उनके निमित्त गयामें पिण्डदान करना—ये तीन बातें पूरी करनेवाले पुत्रका पुत्रत्व सार्थक है।

वैसे गयामें पूर्णरूपसे श्राद्ध करनेमें सत्रह दिनका समय लगता है, परंतु यदि आप असमर्थ हैं तो सात दिन, पाँच दिन, तीन दिन अथवा एक दिनमें भी गयाश्राद्धका कार्य सम्पन्न कर सकते हैं।

आपने लिखा कि भतीजेके द्वारा श्राद्ध कराया जा सकता है क्या? सो निवेदन है कि भतीजेके माता-पिता नहीं हैं तो उसे भी अपने माता-पिताका श्राद्ध करना चाहिये। इसके साथ ही उन्हें आपके माता-पिताके निमित्त भी पिण्डदान करना चाहिये, कारण आपलोग एक ही परिवारके हैं तथा यह उनका कर्तव्य है। इसी प्रकार आपका भी कर्तव्य है कि आप अपने माता-पिताका गयामें जाकर श्राद्ध करें और उनके साथ ही अपने चाचा-चाचीको भी पिण्डदान दें। गयामें अपने माता-पिताके अतिरिक्त अपने जाने-अनजाने सभी सम्बन्धियों तथा मित्रोंके निमित्त पिण्ड देनेकी व्यवस्था है। अतः सबके निमित्त

पिण्ड देना चाहिये। अलग-अलग प्रत्येक व्यक्तिका गयाश्राद्ध करनेका कर्तव्य बनता है।

आपने लिखा कि गयाश्राद्धकी पूर्णताके लिये क्या वाराणसी तथा प्रयागमें श्राद्ध करना अनिवार्य है? सो ऐसी कोई बात नहीं है, इसका नियम यह है कि गया जाते समय मार्गमें जो भी तीर्थ पड़ते हैं, उनमें श्राद्ध करना चाहिये। आप यदि अशक्त हैं तो गया जाकर तीन दिन अथवा एक दिनका श्राद्ध कर सकते हैं। यदि जानेमें एकदम असमर्थ हों तब फिर भतीजेके द्वारा भी कराना उचित ही है। शेष प्रभुकृपा।

(४)

साधनसिद्धिमें अभिमान तथा बहिर्मुखता बाधक है

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण। आपका एक पत्र प्राप्त हुआ। जिसमें आपने गोशाला बनानेकी तथा गोसेवामें संलग्न होनेकी इच्छा व्यक्त की। आपकी यह भावना बड़ी शुभ है, गोसेवासे बढ़कर दूसरा कोई कार्य नहीं है, परंतु आपने गोशाला बनानेके लिये ट्रस्टकी स्थापना, चन्दा इकट्ठा करना तथा गोमयसे ओषधि आदिका निर्माण करना—इन सब कार्योंमें अपनी रुचि दिखायी। ये कार्य तो बहुत अच्छे हैं, यथासम्भव करने भी चाहिये, परंतु इन सब कार्योंके लिये आपके पास साधन क्या हैं? इसपर भी पहले विचार कर लेना चाहिये।

गोमाताको प्रतिदिन भोजन चाहिये, आजकलके समयमें बार-बार चन्दा इकट्ठा करना सबके लिये सम्भव नहीं है, अतः अपने साधन और अपनी क्षमतापर विचार करके ही आगे पैर रखना चाहिये। इसकी अपेक्षा पूर्वमें स्थापित किसी गोशालासे अपनेको जोड़कर उसमें सहयोग करना तथा सेवा करना ज्यादा सरल है। यदि आपके पास साधनकी सम्पन्नता हो तो नये गोसदन भी खोल सकते हैं।

आपने लिखा कि आप अपने पिताजीकी स्मृतिमें गोशाला बनाना चाहते हैं—यह बात तो बहुत अच्छी है, परंतु संतोंकी दृष्टिमें यह भी एक प्रकारकी वासना ही है। इससे भी उत्तम बात यह है कि भगवान्के नामपर गोशाला बनायी जाय। इसमें निष्कामता अधिक है। अभिमान भी अपेक्षाकृत इसमें कम आनेकी सम्भावना रहेगी। आपने अभिमान और बहिर्मुखताके सम्बन्धमें लिखा, सो अभिमान और बहिर्मुखता किसी भी कार्यमें न आये इसके लिये निरन्तर सावधान रहनेकी आवश्यकता है। प्रत्येक कार्य करनेमें भगवत्-शरणागतिका भाव बना रहे तो अभिमान और बहिर्मुखतासे किसी रूपमें बचा जा सकता है। शेष प्रभुकृपा।

कृपानुभूति

(१)

मनकी वेदना

मैंने और मेरे मित्रोंने घूमनेका कार्यक्रम बनाया तो मैंने कहा कि हरिद्वार चलते हैं, घूमना भी हो जायेगा और गंगा-स्नान भी। मेरा सुझाव सबको पसन्द आया और हमलोग बसद्वारा हरिद्वार पहुँचे। मैं सबसे ज्यादा प्रसन्न था; क्योंकि काफी अरसे बाद कहीं बाहर जानेका मौका मिला था।

गंगा-स्नानके बाद हमलोग हरिद्वारसे ऋषीकेशके लिये रवाना हुए। वहाँका प्राकृतिक सौन्दर्य देखकर मन ऐसा प्रफुल्लित हो गया, जैसे—काले-काले बादलोंको देखकर मोर आनन्दित होकर नृत्य करने लगता है। एक बार तो मैं अपने-आपको कोसने लगा कि अबतक ऐसे सौन्दर्यसे मैं क्यों वंचित रहा!

हमारा कार्यक्रम तीन दिन रुकनेका था, लेकिन मेरे विशेष आग्रहपर दो दिनकी अनुमति सभी मित्रोंने दे दी।

चूँकि अब हमारे पास समयका अभाव नहीं था, इसलिये हम हर स्थानको बड़े आरामसे देख रहे थे।

दुबारा गंगा-स्नान करनेके बाद हमलोग स्वर्गाश्रम देखने गये, वहाँ एक परिसरमें कई श्लोक एवं रामायणकी चौपाइयाँ लिखी हुई थीं। मैं एक-एक शब्दको बड़ी तल्लीनतासे समझनेकी कोशिश कर रहा था, तभी मेरी नजर तुलसीदासजीद्वारा रचित इस चौपाईपर केन्द्रित हो गयी—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।

मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

इसे पढ़नेके बाद तो मेरा मन बिलकुल उदास हो गया। मेरा सारा उत्साह क्षीण हो गया और आगे घूमनेकी इच्छा ऐसे समाप्त हो गयी जैसे अग्निपर किसीने अचानक जल डाल दिया हो या कोई तैरती हुई नाव पानीमें डूब गयी हो। मैंने मित्रोंसे कहा चलो, वापस चलते हैं। पहले मैं लगातार सबसे बातें करता जा रहा था, लेकिन अब मैं बिलकुल शान्त था। मुझे किसीकी कोई बात अच्छी नहीं लग रही थी। कोई हँसता तो लगता कि वह मेरा उपहास कर रहा है।

हमलोग वापस आगरा आनेके लिये बसमें बैठ चुके थे। मैं सबसे अलग पीछे जाकर बैठ गया। मेरे मित्र कह रहे थे कि सबसे ज्यादा बातें करनेवाला बिलकुल चुप क्यों है? एक मित्र बोला, 'अरे गंगा-स्नान करनेके बाद यह

मौनी बाबा हो गया है।' दूसरा बोला, 'चलो अच्छा है, नहीं तो पूरे सफरमें ये मेरा दिमाग खाली कर देता।'

लेकिन मुझे तो ऐसा लग रहा था कि गोस्वामीजीकी चौपाई 'निर्मल मन जन सो मोहि पावा'—मेरा पीछा कर रही है। ये क्या! ये चौपाई तो मेरी सीटके ऊपर भी लिखी है। मैंने पास बैठे व्यक्तिसे कहा—ये देखो क्या लिखा है, पढ़ा आपने? वह बोला अरे! कौन-सी नई बात लिखी है? लिखा है 'कृपया शान्तिसे बैठें।' मैंने अपने मस्तिष्कको झटका दिया, शायद मेरा मानसिक सन्तुलन ठीक नहीं था। लेकिन मेरा मन तो एक ही बात सोच रहा था, अब मेरा दुनियाँमें कोई नहीं है, मैं अनाथ हो गया। जिस ईश्वरको अपना मानता था, जो मेरे जीवनका सहारा था, जिसके सामने बैठकर मैं अपना दुःख भूल जाता था, अब वह मुझसे बहुत दूर है। जो आस्था मेरे अन्दर थी वह भी डौंवाडोल होने लगी, जैसे—बिना माँझीकी नाव भँवरमें डूब रही हो।

गोस्वामीजीके अनुसार तो भगवान्को छल-कपट रहित, द्वेषरहित व्यक्ति ही पसन्द है, लेकिन मैं दिनमें पता नहीं कितनी बार झूठ बोलता हूँ, कितनी बार माँ एवं पिताजीको अपनी जिद पूरी करवानेके लिये सताया होगा। मेरी ये बचपनसे जुड़ी आदतें पता नहीं कबतक छूटें या फिर न भी छूटें। मनको बिलकुल शुद्ध करना होगा। मालूम नहीं ये सब कैसे होगा और मैं ठहरा एक व्यापारी और इसमें तो झूठ-सच बोलना ही पड़ता है। ऐसा सोचते-सोचते पता नहीं कब आगरा आ गया।

घर पहुँचकर मैं उदास रहने लगा, परिवारवाले सोच रहे थे बाहर घूमकर आया है—इस कारण यहाँ मन नहीं लग रहा होगा, अपने-आप ठीक हो जायगा, लेकिन मेरी वेदनाको कोई नहीं समझ पा रहा था। भरा-पूरा परिवार होनेके बावजूद मैं अपने-आपको बिलकुल अकेला महसूस कर रहा था। हमारे घरमें एक छोटा-सा मन्दिर भी है। पहले मैं नित्य दर्शन करता था, लेकिन न जाने क्यों अब मुझमें इतना साहस नहीं था कि मैं उसके अन्दर भी जा सकूँ। मुझे अपने आपसे ग्लानि-सी होने लगी। मैं सोचने लगा मेरा जीवन ही व्यर्थ है, मैं तो ईश्वरके सन्मुख मुँह दिखानेके काबिल भी नहीं रहा।

फिर एक दिन अचानक मेरा बहुत पुराना मित्र घर

आया। मैंने उससे भी कोई बात नहीं की, फिर भी वह बोला, 'मेरे पड़ोसमें एक पण्डितजी हैं, उनके यहाँ अखण्ड रामायणका पाठ चल रहा है, तू वहाँ चल।' मैंने कहा—भाई! मेरा बिलकुल भी कहीं जानेका मन नहीं है, तो वह बोला—सच बात तो ये है कि मन तो मेरा भी नहीं है, लेकिन उन्होंने बहुत आग्रह किया है कि रातमें पाठ करनेवालोंकी संख्या बहुत कम हो जाती है; इसलिये मुझे रातभर रुकना है, तू साथ रहेगा तो कम-से-कम रात्रि आरामसे कट जायगी और वह मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही मेरा हाथ पकड़कर लगभग घसीटते हुए मुझे वहाँ ले गया।

हमने वहाँ पहुँचकर देखा पण्डितजी आसनपर विराजमान हैं और वे बहुत ही सुन्दर ढंगसे चौपाइयाँ पढ़ रहे थे, कुछ लोग नीचे बैठे उनका साथ दे रहे थे, लेकिन मैं चुपचाप ही बैठ गया। पण्डितजीने दोहा पढ़नेके बाद जैसे ही ये सम्पुट लगाया....

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की ॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ ॥

इतना सुनते ही मेरे मनमें अचानक स्फूर्तिका संचार हुआ, जैसे हवामें बुझती हुई लौको किसीने दोनों हाथोंसे सहारा देकर ज्योति प्रदान की हो।

अनेक दृष्टान्त पण्डितजी सुनाते गये, लेकिन मुझे तो हर चौपाईमें यही भाव नजर आ रहा था '**जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ**' मेरा मन आनन्दित हो रहा था, सारी व्यथा समाप्त हो चुकी थी। मुझे लगा कि मैं बेकार ही परेशान था, मुझे दोषरहित करनेके लिये केवल माँ जानकीके चरणोंकी वन्दना ही काफी है, जगजननीकी कृपासे ही मेरी मति निर्मल हो जायेगी, फिर तो मेरे प्रभु मुझे अवश्य ही अपनायेंगे। मैं अपने मित्रको मन-ही-मन धन्यवाद देता रहा और मेरी आँखोंसे अश्रुधारा बह निकली, मानो मनके समस्त विकार अपनेमें समेटे पवित्र गंगा बह रही हो।—**बी० एस० 'योगी'**

(२)

भगवत्कृपासे सद्गति

मेरे पूज्य पिताजी जिला हरदोईके रहनेवाले थे, ये बचपनसे ही सदा भगवद्विषयक चर्चा तथा सत्संग आदिमें अनुरक्त रहते थे। ये गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोंका स्वयं भी स्वाध्याय करते तथा दूसरोंको भी स्वाध्यायके लिये प्रेरित

करते थे। ये गीता-जयन्ती पर लेख लिखकर कालेजों, महाविद्यालयोंमें वितरित करते तथा अध्यापकोंको गीता-जयन्ती मनानेकी प्रेरणा देते थे। इन्होंने अपने क्षेत्रमें गीता-रामायण परीक्षा-केन्द्र खुलवाये, जो आज भी अनवरतरूपसे संचालित हो रहे हैं। गृहस्थीका पालन करते हुए इनका सम्पूर्ण जीवन गीता, रामायण, भागवत-विषयक प्रचार-प्रसार करते हुए व्यतीत हुआ। ये लगभग साठ वर्षोंसे गीता-भवन ऋषिकेशमें सत्संगके वास्ते एक महीना रहते थे।

१४ मई सन् २००७ ई० को ये गीता-भवन, ऋषिकेशके लिये अपने घरसे निकले और वहाँ सत्संगका आनन्द लिया। १६ जूनको वहाँ जनेऊ-संस्कारका महोत्सव निश्चित था। इसीमें पिताजीने यज्ञोपवीतके लिये अपने पौत्रको बुलाया, किंतु भगवान्की प्रेरणासे ८ जूनको वे अकेले ही घरसे उसे बुला लानेके लिये ट्रेनसे चल दिये। रास्तेमें धामपुर स्टेशनपर पानी पीनेको नीचे उतरे, लेकिन चढ़नेके पहले ही ट्रेन चल दी, ट्रेनपर चढ़नेकी कोशिशमें वे गिर पड़े, फिर सँभलकर उठे। अबकी बार ट्रेनके नीचे चले गये। पूरी ट्रेन निकल गयी—जब जी०आर०पी० के कर्मचारियोंने इनको नीचेसे उठाया, उस समय ये बेहोशीकी हालतमें थे। भगवान्का चमत्कार कि पूरी ट्रेन निकल गयी, लेकिन एक अंग भी नहीं कटा, केवल सिरमें चोट लगी! अस्पताल ले जाया गया। वहाँ ये बोलने लगे। घरका पता बताया फिर ३-४ घण्टेके बाद सदाके लिये शान्त (ब्रह्मलीन) हो गये।

दूसरे दिन जब थानेसे सूचना मिली, तब हमने पार्थिव शरीरको ले जाकर अन्त्येष्टि-क्रिया आदि समस्त कार्य शास्त्रीय विधिसे सम्पन्न किये।

जी०आर०पी० कर्मियोंने बताया कि ऐसी अद्भुत घटना हमने नहीं देखी कि पूरी ट्रेन निकल गयी और शरीर ज्यों-का-त्यों ही रहा। अन्य कुछ न बोलकर केवल अपना समुचित अन्तिम संस्कार करानेके लिये ही बोले और शान्त हो गये। यह ईश्वरकी चमत्कारिक कृपा ही है, अन्यथा हमें उनके विषयमें कोई जानकारी भी न हो पाती और हम उनके प्रति अपने अन्तिम दायित्वसे भी वंचित रह जाते; हमें तो यही लगता है कि जो प्रभुके कार्यमें अपना जीवन अर्पण करता है, उसकी सद्गतिका जिम्मा स्वयं भगवान् उठाते हैं।—**पवनकुमार वर्मा**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

अनुभूति

बात है कई वर्ष पूर्वकी। तब मैं दुर्गासप्तशतीके कुछ अंशका नियमितरूपसे पाठ करता था। करुणामयी जगज्जननीकी कृपासे एक विरक्त महात्माका सम्पर्क हो गया। वे भी शक्तिके उपासक थे। वे श्रीराधा, सीता, पार्वती तथा नवदुर्गा आदि कल्याणमयी देवियोंकी प्रायः चर्चा करते और उनकी उपासनाकी विधि तथा माहात्म्य सुनाते। मेरा मन जगदम्बा ललिताम्बाकी ओर धीरे-धीरे झुक रहा था, यद्यपि उनके सम्बन्धमें अपना कोई ज्ञान नहीं था। एक श्लोक मैंने अवश्य पढ़ा था—

यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षो

यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगः।

श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां

भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

मुक्तिकी अपेक्षा प्रायः सभी मनुष्य करते हैं; किंतु भोगका आकर्षण असाधारण होता है। जागतिक भोगोंकी रसानुभूतिके अनन्तर परमार्थकी नितान्त आवश्यकता विरले ही पुण्यमय पुरुषोंके मनमें उदित होती है और जहाँ भोग और मोक्ष दोनोंकी सिद्धि हो, आकर्षण स्वाभाविक है। पराम्बाकी दया, उक्त सन्तने श्रीसुन्दरीकी ही उपासनापर बल देना आरम्भ किया। अर्चन-विधि बतायी और अपनी संनिधिमें कई अर्चन करवाये भी।

उन्हीं दिनों, शायद मार्गशीर्ष मासका कृष्णपक्ष था। एक दिन रात्रिमें मैं शहरसे लौट रहा था। लगभग नौ बजे थे। फलोंकी दूकान थी। मेरी दृष्टि एक दूकानपर पड़ी। दो अत्यन्त सुन्दर पके पीले-पीले आम थे। मेरे पास कुल चार आने पैसे थे। फिर भी आमका दाम मैंने पूछ लिया। दूकानदारने डेढ़ रुपया बताया।

मैं चुपचाप लौट पड़ा। फलोंमें मुझे सर्वाधिक प्रिय आम लगता है। इस कारण बार-बार मुझे उन आमोंकी स्मृति आ रही थी। साढ़े नौ बजेके आस-पास मैं अपने निवासपर पहुँचा।

उस दिन भूख न होनेके कारण मैंने अपना भोजन न बनानेके लिये कह दिया था, पर लौटनेपर भूख भी मालूम हुई। बत्ती बुझाकर मैं चारपाईपर लेट गया। भूखके

कारण नींद नहीं आ रही थी और बार-बार मुझे उन दो आमोंकी याद आ जाती थी। मैंने मन-ही-मन कहा 'मेरी आराध्या तो जगज्जननी, सर्वेश्वरी एवं सर्वान्तर्यामिनी हैं। माँ अपने बच्चेकी प्रत्येक इच्छाकी पूर्ति करती हैं। सबका रक्त-मांस खा जानेवाली सिंहिनी भी तो अपने बच्चोंकी सेवा करती है फिर अनन्त श्रीसम्पन्न, अनन्त महिमाशालिनी, करुणामयी माँ अपने बालककी इच्छा क्यों पूरी न करे। मैं जगदम्बाका नाम-स्मरण करता हूँ। मेरा लोक-परलोक सब उन्हींकी दयापर अवलम्बित है। यह सर्वथा सत्य है, किंतु है तो यह सुनी-सुनायी बात ही। मैंने तो अपने नेत्रोंसे कभी कुछ नहीं देखा, कभी कुछ भी नहीं अनुभव किया। आज मैं परीक्षा करना चाहता हूँ। माताकी ममता और उसके प्यारका अनुभव करना चाहता हूँ। जाड़ेकी रात्रि है। दस बजे हैं। सब सो रहे हैं और जहाँतक मैं समझता हूँ, इस शहरमें इस ऋतुमें उन दो आमोंके अतिरिक्त और तीसरा कोई आम कहीं है नहीं। आम खानेकी मेरी इच्छा है और यह बात केवल मैं जानता हूँ और जानती है वह सर्वज्ञा श्रीमाँ। यदि वह मेरे किसीसे कुछ कहे बिना इस इच्छाकी पूर्ति कर दे, तब तो माँके प्यारका मुझे ज्ञान हो जाय।'

इसी प्रकार मन-ही-मन कहते मुझे नींद-सी आ गयी। अचानक मेरे कमरेका दरवाजा खुला। बिजली जल गयी, परिचित आवाज सुनकर मैं जगा तो देखता हूँ, मेरे आश्रमके ही एक बन्धु ठीक वैसे ही दो आम लिये खड़े हैं। अच्छी तरह मैं चेतमें भी नहीं आया था कि उन्होंने कहा—'माँजीने आपके लिये ये आम भेजे हैं और कहा है, इसे जल्दी दे आओ, तबतक मैं दूध गरम कर रही हूँ। आप इन्हें लीजिये, मैं दूध लेने जा रहा हूँ।'

आम मेरे हाथमें थे, वे दूध लेने चले गये। उनके लौटनेपर मैंने पूछा—'ये आम कहाँसे आ गये?'

उन्होंने बताया 'बम्बईसे पार्सल आया था। वैसे ही रखा था। शायद कल खोला जाता, पर वे अचानक उठकर पेटी खोलने लगीं। मैंने कहा, रात्रिमें क्या जरूरत है? कल खोलियेगा। तब बोलीं, 'नहीं, अभी खोलो।' मैं खोलने लगा। पेटी खुलते ही उन्होंने दो आम निकालकर कहा 'इन्हें अभी दुबेजीको दे आओ। तबतक मैं दूध गरम कर

(३)

ईमानदारीकी मिसाल

घटना २७ नवम्बर सन् २००८ ई० की है। मेरी पुत्रीकी शादी २४ नवम्बर २००८ को हो गयी थी। २७ नवम्बरको मेरी पुत्री रेणू कँवर मेरे यहाँसे मेरी दूसरी पुत्री सुमनके साथ अपने ससुराल जयपुर जीपसे जा रही थी। मैंने उसके पर्समें २५०० रुपये, उसके कानकी बाली तथा अटैचीकी चाबी रखकर पर्स उसके हाथमें दे दिया। जीपमें पिछली सीटपर उसके पास सुमन बैठ गयी। जब श्रीमाधोपुरसे अजीतगढ़ राजमार्गपर जीप दौड़ रही थी तब रेणूके हाथसे पर्स गिर गया और उसको पता भी नहीं चला। अपने स्थानपर पहुँचनेके बाद रेणूको ख्याल आया तो वह बहुत ही घबड़ा गयी। उन लोगोंने जीपमें तलाश किया एवं मुझे फोन किया। हमलोगोंको भी चिन्ता हो गयी। अचानक दूसरे दिन रातको एक फोन आया कि भाई साहब! आपका पर्स गिर गया है क्या? जब हमने पूरी जानकारीके साथ बताया तब उन महानुभाव जिनका नाम बजरंगलाल शर्मा था, जो दिवराला गाँवके रहनेवाले थे, ने हमें अपने गाँव बुलाया। वहाँ जानेपर उन्होंने हमें बताया कि वे और उनके साथी मोटरसाइकिलसे जीपके पीछे-पीछे आ रहे थे, सो उन्होंने पर्स उठा लिया। पर्समें एक पर्चीपर फोन-नम्बर लिखा हुआ था। हमने निश्चय किया कि इस नम्बरपर फोन करनेसे पर्स किसका है जानकारी हो जायगी, जब हमने फोन किया तो आपसे सम्पर्क हुआ, कदाचित् फोन-नम्बर न मिलता तो हमलोग भी परेशान हो जाते कि इस रुपयों तथा आभूषणसे भरे पर्सका क्या करें। ऐसा कहकर उन्होंने पैसे एवं कानकी बालीके साथ हमें पर्स सही-सलामत लौटाया। उनकी ऐसी अच्छी नीयत देखकर हमें बहुत ताज्जुब हुआ कि आजके ऐसे कलिकालमें भी ईमानदार तथा कर्तव्यपरायण लोग मौजूद हैं, हमने उन्हें बार-बार धन्यवाद देते हुए पारितोषिकके रूपमें कुछ रुपये देने चाहे तो वे बोले—यह तो हमारा फर्ज था।—रामस्वरूपसिंह चौहान

(४)

वह हाड़-माँसका प्राणी कैसे बचा ?

घटना दो दशक पूर्वकी है, श्रावणके उत्तरार्धमें अतिवृष्टिसे गाँव जलाप्लावित होनेसे टापूकी शकल ले चुका था। नन्दगाँवसे गिडोहका ३ कि० मी० डामर रोड ही आवागमनका एकमात्र माध्यम अवशेष था; परंतु इसको जोड़नेवाला सम्पर्क-मार्ग भी जलसे प्रभावित था।

प्रातःकाल मेरे दोनों अनुज ओमप्रकाश एवं गोविन्दराम तड़के ही अखाड़ेमें व्यायाम करके खेतोंकी ओर ट्रैक्टर लेकर निकल गये। खेतसे ट्रैक्टरमें खाली ट्राली लेकर लौट रहे थे। गाँवसे आधा फर्लांगकी दूरीपर प्राचीन हंसदेव मन्दिर है, वहाँ कुछ दूरतक एक फुट पानीसे होकर आना पड़ता था। वे प्रतिदिनकी भाँति लौट रहे थे, ट्राली खाली होनेसे इन्हें दुर्घटनाकी किंचित् आशंका नहीं थी; परंतु दुर्योग ही कहेंगे कि एक छोटेसे गड्डेमें ट्रालीके पहियेके झटकेकी प्रतिक्रियासे अकस्मात् ट्रैक्टर ट्रालीके ऊपर उलटकर आ गया। मडगार्ड पर बैठे ओमप्रकाश तो छलाँग लगाकर सकुशल बच निकले; परंतु ड्राइवर गोविन्दरामकी स्थिति चिन्ता और आशंकायुक्त थी, वह ट्रैक्टरके इंजन और सीटके बीच फँस गया था। बड़ा भाई छोटे भाईको दुर्घटनाग्रस्त समझ सन्न रह गया, उसके पैरों तलेकी जमीन खिसक गयी। कुछ क्षणोंके लिये वे अवाक् रह गये। हड़बड़ाहटकी अप्रत्याशित स्थितिने उन्हें किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया। कुछ सूझ नहीं रहा था। आखिर क्या किया जाय! ओमप्रकाशका कहना है कि हम दोनों नवयुवक थे, यदि शेर भी आ जाय तो एक बार उसे भी टक्कर देनेका हमारा साहस था, दोनोंमें बराबरकी शक्ति; परंतु आश्चर्य कि मेरे मुँहसे आवाज भी नहीं निकल रही थी, मैं घिघिया गया, आखिर! यह क्या हुआ!! और मेरा छोटा भाई?... मैंने किसी प्रकार लोगोंको हादसेसे अवगत करानेहेतु लड़खड़ाते स्वरमें सहयोगकी गुहार लगायी। मेरे नेत्रोंमें आँसू और दिलमें धड़कन ही शेष थी, निर्बलके बल 'नन्दके लाला' का स्मरण किया। साहसके साथ ट्रैक्टरकी ओर कदम बढ़ाया, यह सोचकर कि पूर्वजोंके पुण्य-प्रताप एवं महापुरुषोंके आशीर्वादसे यदि कोई साँस मिल जाय! मैंने उसे नामसे सम्बोधित किया, तो उत्तरमें पाया कि मैं बिलकुल ठीक हूँ, ट्रैक्टर और गद्दीके बीच फँसा हुआ हूँ, घबड़ाना नहीं। अब तो मानो प्राण ही लौट आये हों, लोग दौड़कर आये, ट्रैक्टर सीधा किया सीट तो चकनाचूर हो गयी थी; परंतु ड्राइवर गोविन्दराम सकुशल था, उसे आहिस्तासे निकाला गया, आश्चर्य! कि उसके शरीरमें खरोंच भी नहीं आयी थी। लौहनिर्मित गद्दी तो टूट गयी; परंतु उस पर बैठा हाड़-माँसका प्राणी कैसे बचा? 'स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे' उक्ति रह-रहकर जीभपर डोलने लगी। सभी परिजनोंने भगवान्के प्रति अटूट निष्ठासे कृतज्ञता ज्ञापित की। उनकी कृपासे ही यह सम्भव हो सका था।—डॉ० हेतिलाल 'त्रिपाठी'

मनन करने योग्य

कर्ता एकमात्र भगवान्

सुलतान निजामुद्दीन मध्य भारतका सुलतान था। जो उसके पास आता, खाली हाथ नहीं लौटता था। इस दरियादिलीके साथ उसमें दाता होनेका अहं भी कूट-कूटकर भरा था। माँगनेवाले उसकी प्रशंसा में कहा करते थे, 'जिसको नहीं दे भगवान्, उसे देता है सुलतान।' अपनी झूठी प्रशंसासे प्रसन्न होकर वह माँगनेवालोंको इतना धन देता था कि उन्हें दुबारा न माँगना पड़े।

मध्यभारतमें उन्हीं दिनों एक साधु बाबा थे। सभी उन्हें बाबा मस्तराम कहकर पुकारते थे। बाबा रोज भिक्षा माँगने निकलते थे। कुछ लोगोंने बाबा मस्तरामसे कहा—बाबा! रोज-रोज भिक्षा माँगनेका चक्कर खत्म करो। एक दिन जाकर सुलतानसे माँग लो। बस, आपको सिर्फ उसके द्वारपर पहुँचकर इतना ही तो पुकारना है, 'जिसको नहीं दे भगवान् उसे देता है सुलतान।'

स्वभावसे फक्कड़ बाबा यह सुनकर जोरसे हँस पड़े और कहने लगे—पागल है वह। लगता है, उसे अपने-आपपर भारी घमण्ड हो गया है। भला, वह है कौन किसीको देनेवाला? अरे! जिसे नहीं दे भगवान्, उसे क्या देगा सुलतान?

बाबाकी बात धीरे-धीरे सुलतानतक पहुँच गयी थी। उनकी बातें सुलतानको अच्छी नहीं लगीं। उसे लगा जैसे बाबा मस्तराम उसका मखौल उड़ा रहे हैं। आखिरकार सुलतानने एक योजना बनायी।

योजनाके अनुसार सुलतानने गाँववालेका वेष बनाया। बैलगाड़ीमें तरबूज भरे और उधर जाकर बैठ गया, जिधरसे बाबा मस्तराम भिक्षा माँगने जाया करते थे। थोड़ी देरमें बाबा मस्तराम भिक्षा लेने निकले। जब वे तरबूजवालेके पास पहुँचे, तो उसने आदरसहित बाबाको छाँटकर अच्छा-सा तरबूज भिक्षामें दे दिया।

बाबा तरबूजको लेकर वापस लौट चले। उन्होंने तरबूज एक तरफ रखा और भजन-पूजनमें बैठ गये। कुछ देरमें एक राहगीर विश्रामके लिये बाबाकी झोपड़ीमें आ गया।

संयोगवश राहगीरके पास भी एक तरबूज था। लेकिन उसका तरबूज बाबाके तरबूजसे बहुत छोटा था। बाबाके तरबूजको देखकर वह मन-ही-मन सोच रहा था, काश! इतना बड़ा तरबूज मेरे पास होता। मैं ठहरा परिवारवाला। इस छोटे-से तरबूजसे किस तरह काम चलेगा, वैसे भी इतने बड़े तरबूजका साधु बाबा क्या करेंगे?

राहगीर तो यह सोच ही रहा था, बाबा उसके मनकी बात जान गये थे। सो बोले—भाई! यह तरबूज तुम ले जाओ और अपनावाला छोटा तरबूज मुझे दे दो। यह सुनकर राहगीर चौंका। बोला—नहीं बाबा! भला, मैं आपका तरबूज कैसे ले सकता हूँ?

बाबा मस्तरामने हँसते हुए कहा—संकोच नहीं करो, बेटा! मैं तो अकेला फक्कड़ हूँ। तुम बाल-बच्चेवाले हो? इसे

तुम ले जाओगे तो बच्चोंसहित मजेसे खाओगे। मेरा काम तो छोटेवाले तरबूजसे भी चल जायगा। बाबाके इतना कहनेपर उसने तरबूज लेना मंजूर कर लिया। तरबूजको लेकर अपने घर चला गया।

भोजनके समय बाबाने तरबूज काटा। तरबूज बहुत मीठा था। बाबाके लिये पर्याप्त था, उधर कुछ देरमें राहगीर भी अपने घर पहुँच गया। इतना बड़ा और अच्छा तरबूज देखकर घरके सभी सदस्य प्रसन्न थे। सब-के-सब तरबूज खाने बैठे। तरबूजको चाकूसे काटा गया। मगर अन्दरसे तरबूजको देखकर वे हैरान रह गये।

तरबूजमें हीरे-मोती, जवाहरात छिपे हुए थे। इतनी दौलत तो उन्होंने कभी देखी भी नहीं थी। जब उन्होंने तरबूजको ध्यानसे देखा, तो समझ गये कि सफाईपूर्वक तरबूजको खोखलाकर उसमें धन भर दिया गया था। हाँलाकि उन लोगोंकी तरबूज खानेकी इच्छा पूरी नहीं हुई थी, पर वे प्रसन्न थे। आखिर एक गरीब परिवारको एकाएक इतना धन मिल गया था। वे इसे साधु बाबाकी कृपा मान रहे थे।

दूसरे दिन मस्तराम बाबा फिर भिक्षा माँगते हुए उस तरबूजवालेकी तरफ चले गये। बाबाको भीख माँगते देखकर वह चौंका। उसने बाबासे कहा—लगता है आपको भीख माँगनेकी आदत ही पड़ चुकी, अन्यथा इतना धन मिलनेके बाद भी कोई भीख माँगता है? कौन-सा धन? बाबाने हैरानीसे पूछा।

वही धन, जो मैंने तुम्हें कल दिया था।

कल तुमने मुझे तरबूज अवश्य दिया था, पर कोई धन नहीं।

अपना असली परिचय देते हुए सुलतानने कहा—मैंने कल जो तरबूज दिया था, उसमें बेशुमार दौलत थी। इतनी दौलत कि जीवनभर खर्चा करो, तो भी समाप्त नहीं होती। मैं आज इसीलिये बैठा हूँ कि तुम अब भी भिक्षा माँगते हो क्या, यह जान सकूँ।

बाबा मस्तराम सबकुछ जान चुके थे। वे हँसते हुए सुलतानसे बोले—'जिसे नहीं दे भगवान्, उसे क्या देगा सुलतान।' मनमें घमण्ड नहीं लाओ सुलतान—देनेवाला ईश्वर है। सुलतानकी क्या हस्ती जो उसकी मर्जीके बिना किसीको कुछ दे दे? यदि तुम देते हो तो ईश्वरकी मर्जीसे ही देते हो। यह कहते हुए बाबा मस्तरामने तरबूज बदलनेवाली सम्पूर्ण घटना कह सुनायी। वे बोले कि धन तरबूजमें भरकर मेरे माध्यमसे राहगीरको देनेके लिये ईश्वरका आदेश था। सो तुमने पूरा किया।

सुलतान समझ गया कि उसने कितना बड़ा भ्रम पाल रखा है एवं उसे समझमें आ गया कि कर्ता एकमात्र भगवान् ही है, कर्मके माध्यम भले ही अनेक हों। [अखण्ड ज्योति]

[प्रेषक—श्रीलखीरामजी अग्रवाल]